जैन-सिद्धान्त-भास्कर

भाग ११ किरण २

THE JAINA ANTIQUARY

Vol. X. No. II.

Edited by

Prof. Hiralal Jain, M. A., LL.B.
Prof. A. N. Upadhye, M. A., D. Litt.
B. Kamata Prasad Jain, M. R. A. S.
Pt. K. Bhujabali Shastri, Vidyabhushana.

PUBLISHED AT

THE CENTRAL JAINA ORIENTAL LIBRARY
(JAINA SIDDHANTA BHAVANA)
ARRAH, BIHAR, INDIA.

Inland Rs. 3. Foreign 4s. 8d. Single Copy Rs. 1/8.

JANUARY, 1945.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

8448

विषय-सूची

पृष्ठ सं०

१ सोमदेवसूरि और महेन्द्रदेव—[ले० श्रीयुत पं० नाथूराम प्रेमी ... ८९

२ भट्टारक यशःकीर्त्ति—[ले० श्रीयुत पं० परमानन्द जैन शास्त्री ... ९४

३ मंडार जिला में जैनपुरातत्त्व—[ले० श्रीयुत बा० कामता प्रसाद जैन डी० एल०; एम० आर० ए० एस० ... ... ९७

४ गुणभद्रप्रशस्ति—[सं० श्रीयुत पं० के० भुजबली शास्त्री, विद्याभूषण, मूड़बिद्री १००

५ तत्त्वार्थसूत्र की परम्परा—[ले० श्रीयुत पं० दरबारीलाल न्यायाचार्य ... १०१

६ तिलोय-पण्णत्ती की प्रशस्ति—[सं० श्रीयुत पं० नेमिचन्द्र जैन शास्त्री, साहित्यरत्न आरा १०७

७ कुछ महत्त्वपूर्ण अप्रकाशित जैन ग्रन्थ और उनका संक्षिप्त परिचय—
[ले० श्रीयुत पं० के० भुजबली शास्त्री, विद्याभूषण मूड़बिद्री ११३

८ स्वप्न और उसका फल—[ले० श्रीयुत पं० नेमिचन्द्र शास्त्री, साहित्यरत्न, आरा ११५

CONTENTS.

1. A Critical Examination of Śvetāmbara and Digambara Chronological Traditions—By Prof. H. C. Seth, M. A. Ph. D. (London) 41

2. Tavanidhi and its Inscriptions—By Prof. Dr. A. N. Upadhye 49

3. Pre-historic Jaina Paintings—By Jyoti Prasad Jain M. A. L. L. B., Lucknow 52

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पृष्ठ सं०
१ अपभ्रंश भाषा का काल—[ले० श्रीयुत पं० परमानन्द जैन शास्त्री ... ३८
२ कुछ महत्त्वपूर्ण अप्रकाशित जैन ग्रन्थ और उनका संक्षिप्त परिचय—
[ले० श्रीयुत पं० के० भुजबली शास्त्री, विद्याभूषण, मूड़विद्री ... ११३
३ क्या षट्खण्डागम के सूत्रकार और उनके टीकाकार—वीरसेनाचार्य का अभिप्राय एक ही है ?—[ले० श्रीयुत प्रो० हीरालाल जैन एम० ए०, एल० एल० बी० १३
४ क्या समन्तभद्र धर्मकीर्ति के उत्तरकालीन हैं ?—
[ले० श्रीयुत न्यायाचार्य पं० दरबारीलाल जैन कोठिया ... ४१
५ गुणभद्रप्रशस्ति—[सं० श्रीयुत पं० के० भुजबलो शास्त्री, विद्याभूषण मूड़विद्री १००
६ जिनकल्प और स्थविरकल्प पर श्वे० साधु श्रीकल्याणविजयजी—
[ले० श्रीयुत बा० कामता प्रसाद जैन डी० एल०, एम० आर० ए० एस० ... १९
७ ज्ञानार्णव और उसके कर्त्ता के काल के विषय में कुछ ज्ञातव्य बातें—
[ले० श्रीयुत पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री, बनारस ... ६
८ तत्त्वार्थसूत्र की परम्परा—[ले० श्रीयुत न्यायाचार्य पं० दरबारीलाल जैन कोठिया १०१
९ तिलोय-पण्णत्ती की प्रशस्ति—[सं० श्रीयुत न्याय-ज्योतिषतीर्थ, साहित्यरत्न पं० नेमिचन्द्र जैन शास्त्री, आरा १०७
१० दि० जैन व्रत कथाएँ—[ले० श्रीयुत बा० अगरचंद नाहटा २७
११ भट्टारक यशःकीर्त्ति—[ले० श्रीयत पं० परमानन्द जैन शास्त्री ... ९४
१२ भारत के विदेशी लोगों में जैनधर्म—[ले० श्रीयुत बा० कामता प्रसाद जैन डी० एल०, एम० आर० ए० एस० ... ... १
१३ भंडारा जिले में जैन पुरातत्त्व—[ले० श्रीयुत बा० कामता प्रसाद जैन डी० एल०, एम० आर० ए० एस० ... ... ९७
१४ वर्तमान तिलोयपण्णत्ती और उसके रचनाकाल आदि का विचार—
[ले० श्रीयुत पं० फूलचन्द्र सिद्धान्त-शास्त्री ... ६५
१५ सोमदेवसूरि और महेन्द्रदेव—[ले० श्रीयुत पं० नाथूराम प्रेमी ... ८९
१६ स्वप्न और उसका फल—[ले० श्रीयुत साहित्यरत्न, न्याय-ज्योतिषतीर्थ पं० नेमिचन्द्र जैन शास्त्री, आरा ५१
१७ स्वप्न और उसका फल—[ले० श्रीयुत साहित्यरत्न, न्याय-ज्योतिषतीर्थ पं० नेमिचन्द्र शास्त्री, आरा ११५
१८ समीक्षा—(क) अनित्याभावना—[पं० नेमिचन्द्र जैन शास्त्री, साहित्यरत्न ... ८४
(ख) वैदिक ऋषिवाद—[बा० बनारसी प्रसाद भोजपुरी हिन्दीरत्न ... ८६
(ग) षट्खण्डागम की ६वीं जिल्द—[पं० नेमिचन्द्र शास्त्री ८३
(घ) स्व० हेमचन्द्र—[पं० कमलाकान्त उपाध्याय, वेदान्त-साहित्य व्याकरणाचार्य ८७
(ङ) स्वामी दयानन्द और वेद—[बा० बनारसी प्रसाद भोजपुरी, हिन्दीरत्न ... ८५

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

CONTENTS

		Pages.
1.	A Critical Examination of Svetambara and Digambara Chronological Traditions— By Prof. H. C. Seth M. A., Ph. D. (London)	41
2.	Krsna Legend in the Jain Canonical Literature Part I—By Mr. M. N. Desh Pande B A.	25
3.	Pre-historic Jaina Paintings—By Jyoti Prasad Jain M.A.L.L. Lucknow	52
4.	The Nativity Scene on a Jaina Relief From Mathura—By Dr. V. S. Agrawala M. A. Ph. D., Curator, Provincial Museum Lucknow	1
5.	The contribution of Jainism to World Culture—By A. Chakrovarti	5
6.	The Jaina Chronology—By Kamta Prasad Jain, LL. D., M. R. A. S.	19
7.	The Metaphysics and Ethies of Jainas—By H Jacobi ...	32
8.	Tavanidhi and its Inscriptions—By Prof. Dr. A' N. Upadhya	49
9.	Vaisali, Mahaviras Birth Place—By Dr. B. C. Law, Ph. D., D. Litt M. A., B. L. F. R. A. S. B.	16

Ac. Gunratnasuri MS

Jin Gun Aradhak Trust

श्रीजिनाय नमः

जैन-सिद्धान्त-भास्कर

जैनपुरातत्त्व और इतिहास-विषयक षाण्मासिक पत्र

भाग ११ | जनवरी, १९४५। माघ, वीर नि० सं० २४७१ | किरण २

सोमदेवसूरि और महेन्द्रदेव

[ले०—श्रीयुत पं० नाथूराम प्रेमी]

नीतिवाक्यामृतके संस्कृत-टीकाकारने लिखा है कि 'कान्यकुब्ज-नरेश महाराजा महेन्द्रदेवने जो पूर्वाचार्य (चाणक्य) कृत अर्थशास्त्रकी दुर्बोधता और गुरुतासे खिन्न थे ग्रन्थकर्त्ता (सोमदेव) को इस सुबोध, ललित और लघु नीतिवाक्यामृत की रचना करने में प्रवृत्त किया'[1]। इस पर मैंने लिखा था[2] कि महेन्द्रदेव का समय वि० सं० ९६४ तक है जब कि यशस्तिलककी रचना वि० सं० १०१६ में हुई है और चूंकि नीतिवाक्यामृतकी प्रशस्ति[3] में सोमदेवने अपनेको यशस्तिलक आदि ग्रन्थोंका कर्त्ता बतलाया है, इसलिए नीतिवाक्यामृत उससे भी पीछे रचा गया है, तब दोनों समसामयिक नहीं हो सकते।

'जैनसाहित्य और इतिहास' के प्रकाशित होने पर, अबसे लगभग ढाई वर्ष पहले, जब कि मैं चालीसगाँवमें था, प्रज्ञाचक्षु पं० गोविन्दरायजी काव्यतीर्थने अपने एक कार्ड-में अन्य समाचारोंके साथ यह संकेत किया कि यशस्तिलकमें एक दो स्थल ऐसे हैं जिनसे मालूम होता है कि सोमदेव महेन्द्रदेवसे परिचित थे और इसलिए संस्कृत टीकाकारकी बात

१—अत्र तावदखिलभूपालमौलिलालितचरणयुगलेन ....कर्णकुब्जेन महाराजश्रीमहेन्द्रदेवेन पूर्वाचार्यकृतार्थशास्त्रदुरवबोधग्रन्थगौरवखिन्नमानसेन सुबोधललितलघुनीतिवाक्यामृतरचनासु प्रवर्तितः..............

२—जैन साहित्य और इतिहास पृ० ७७

३—इति सकलतार्किकचक्रवर्तिचूडामणिचुम्बितचरणस्य, पंचपंचाशन्महावादवादिविजयोपार्जितोर्जितकीर्तिमन्दाकिनीपवित्रितत्रिभुवनस्य, परमतपश्चरणरत्नोदन्वतः श्रीमन्नमिदेवभगवतः प्रियशिष्येण-वादीन्द्रकालानलश्रीमन्महेन्द्रदेवभट्टारकानुजेन, स्याद्वादाचलसिंहतार्किकचक्रवर्तिवादीभपंचाननवाक्कल्लोलपयोनिधिकविकुलराजकुंजरप्रभृतिप्रशस्तिप्रशस्तालंकारेण, षण्णवतिप्रकरण-युक्तिचिन्तामणिस्तव-महेन्द्रमातालिसंजल्प-यशोधरमहाराजचरित्रप्रमुखमहाशास्त्रवेधसा श्रीमत्सोमदेवसूरिणा विरचितं नीतिवाक्यामृतं परिसमाप्तम्।—स्याद्वादविद्यालय काशीकी हस्तलिखित प्रति जो आश्विन सुदी १० रविवार शक सं० १८३४ को कारकलनिवासी रंगनाथभट्ट द्वारा लिखी गई है। मुद्रित प्रतिकी प्रशस्तिमें नाममात्रका दो चार शब्दोंका फर्क है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सही हो सकती है। परन्तु उस समय न तो मेरे समक्ष यशस्तिलक था और न दूसरी साधन-सामग्री, इसलिए उक्त संकेतोंपर कुछ विचार न हो सका।

परन्तु इधर जब जैनसिद्धान्त भास्कर (भाग १० किरण २) में डॉ० वी० राघवन एम० ए०, पी-एच० डी० का लेख[१] प्रकाशित हुआ और उन्होंने भी महेन्द्रदेव और सोमदेवके समसामयिक होने पर जोर दिया, तब इस प्रश्नपर विचार करना आवश्यक हो गया।

पहले मैंने पं० गोविन्दरायजीके संकेतोंके अनुसार यशस्तिलकको टटोला और उसमें मुझे दो स्थल विचार करने योग्य मिले—

१—यशस्तिलकके मंगलाचरणके पहले ही पद्यमें महोदय अर्थात् कन्नौज और देव अर्थात् महेन्द्रदेवका संकेत मिलता है—

श्रियं कुवलयानन्दप्रसादितमहोदयः।
देवश्चन्द्रप्रभः पुष्याज्जगन्मानसवासिनीम्॥

यह श्लोक श्लिष्ट है। एक अर्थ होता है चन्द्रप्रभ तीर्थंकरके पक्षमें और दूसरा देव या महेन्द्रदेवके पक्षमें। 'कुवलयानन्दप्रसादितमहोदयः' अर्थात् पृथ्वीमंडलके आनन्दके लिए प्रसादित किया है महोदय[२] को या कन्नौजको जिन्होंने ऐसे महेन्द्रदेव और जिनका महान् उदय पृथ्वीमंडलको आनन्दित करनेके लिए हुआ है ऐसे चन्द्रप्रभ भगवान्[३]।

२ यशस्तिलकके पहले आश्वासके अन्तमें—

सोऽयमाशार्पितयशाः महेन्द्रामरमान्यधीः।
देयात्ते सन्ततानन्दं वस्त्वभीष्टं जिनाधिपः॥

इस श्लोकके चारों चरणोंके प्रथम अक्षरोंमें ग्रन्थकर्त्ताने अपना 'सोमदेव' नाम प्रकट किया है। यह श्लोक भी श्लिष्ट है। एक अर्थ होता है जिनाधिपके पक्षमें और दूसरा सोमदेवके पक्षमें। सोमदेवके पक्षमें 'महेन्द्रामरमान्यधीः' विशेषण स्पष्ट ही बतलाता है कि उनकी बुद्धिका महेन्द्रामर या महेन्द्रदेव सम्मान करते हैं।

उक्त दोनों श्लोकोंसे इस बातका आभास मिलता है कि कान्यकुब्जनरेश महेन्द्रदेवसे सोमदेवसूरि परिचित थे और इसलिए उनकी प्रेरणासे नीतिवाक्यामृतका रचा जाना सम्भव है।

अब रहा समय के व्यवधानका प्रश्न सो डा० राघवनके कथनानुसार कन्नौजनरेश महेन्द्रपालदेव प्रथमकी जगह महेन्द्रपालदेव द्वितीयको मान लेनेसे हल हो जाता है।

१—नीतिवाक्यामृत आदिके रचयिता श्रीसोमदेवसूरि।

२—महोदयः कान्यकुब्जे—मेदिनी-कोष। कान्यकुब्जं महोदयं—हेमनाममाला।

३—कुवलयं पृथ्वीमंडलं तस्य आनन्दाय प्रसादितः प्रसन्नीकृतः महान् अस्तमयरहित उदयो येन स तथोक्तः।—श्रुतसागरसूरि।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

महेन्द्रपालदेव द्वितीयका एक शिलालेख[1] वि० सं० १००३ का प्राप्त हुआ है और दूसरा वि० सं० १००५ का उसके उत्तराधिकारी देवपालदेव[2] का। अतएव १००५ के पहले ही नीतिवाक्यामृतकी रचना हुई होगी।

परन्तु वि० सं० १०१६ में समाप्त हुए यशस्तिलकका उल्लेख नीतिवाक्यामृतकी अन्तिम प्रशस्तिमें है, इसलिए नीतिवाक्यामृतको १०१६ के बादका मानना पड़ता है और तब द्वि० महेन्द्रदेव उसके प्रेरक नहीं बन सकते।

इस पर डा० राघवन कहते हैं कि "एक ग्रन्थकर्त्ताकी रचनाओंका उल्लेख उसके अन्य ग्रन्थकी प्रशस्तिमें होने पर पूरा विश्वास नहीं किया जा सकता, अर्थात् यह मानना बिल्कुल निरापद नहीं है कि चूँकि नीतिवाक्यामृतकी प्रशस्तिमें यशस्तिलकका उल्लेख है, इसलिए यह उसके बादकी रचना है। यह तभी मान्य हो सकता है कि जब यह निश्चय हो जाय कि लिपिकर्त्ताओंने सन्धियों और प्रशस्तियोंमें हस्तक्षेप नहीं किया है।"

बेशक यह संभव है कि सोमदेवकी समस्त रचनाओंसे परिचित लिपिकर्त्ताने अपनी जानकारीके आधारपर प्रशस्तिमें यशस्तिलकका भी नाम शामिल कर दिया हो। लिपि-कारोंने इस तरहकी गड़बड़ेंकी भी हैं। फिर भी इसके लिए एकाध प्रमाण और भी चाहिए जिससे इस बातकी पुष्टि होती हो कि नीतिवाक्यामृत पहलेकी रचना है।

अभी तक मुझे एक ही प्रमाण ऐसा मिला है और वह यह कि नीतिवाक्यामृतकी प्रशस्तिमें सोमदेवने अपने गुरु नेमिदेवको पचपन महावादियोंको पराजित करनेवाला बतलाया है और यशस्तिलककी प्रशस्तिमें तिरानवे[3] महावादियोंको जीतनेवाला। यदि उक्त संख्यायें सचाईके साथ लिखी गई हैं, अन्धाधुन्ध अतिशयोक्तियाँ नहीं हैं, तो इनसे यह सिद्ध हो जाता है कि नीतिवाक्यामृत यशस्तिलकसे पहले बन चुका था। नीतिवाक्यामृत-की रचनाके समय तक नेमिदेवने ५५ वादियोंपर विजय प्राप्त की थी और फिर उसके बाद यशस्तिलककी रचनाके समय तक ३८ वादियोंको और भी जीता। यदि नीतिवाक्यामृत पीछे बना होता तो उक्त संख्यायें इससे उलटी होतीं।

एक बात और है। यदि नीतिवाक्यामृत यशस्तिलकके बादका होता तो, चूँकि वह शुद्ध राजनीतिका ग्रन्थ है, इसलिए किसी राष्ट्रकूट या चालुक्य राजाके लिए ही लिखा जाता और इसका उसमें उल्लेख भी होता। परन्तु ऐसा कोई उल्लेख नहीं है। डा० राघवन प्रथम महेन्द्रपालदेवके लिए भी नीतिवाक्यामृतका रचा जाना असम्भव नहीं समझते; परन्तु महेन्द्रदेव प्रथमके शिलालेख और ताम्रपत्र वि० सं० ९५० से ९६४ तक मिले हैं और उनके उत्तराधिकारी महीपालका वि० सं० ९७१ का लेख मिला है। अतएव नीतिवाक्यामृतको जब वि० सं० ९६४ के लगभग लिखा गया माना जाय, तब कहीं संस्कृत टीकाकारकी बात ठीक बैठे, परन्तु यह समय यशस्तिलककी रचनाके ५२ वर्ष पहले जा पहुंचता है और

१-२—देखो ओझाजीका 'राजपूतानेका इतिहास' प्रथम खंड, पृ० १६४

३—तस्याभवंतपः स्थिते जिनवतेर्जेतुर्महावादिनाम्। —यशस्तिलक

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

चूँकि सोमदेव कमसे कम वि० सं० १०२३ तक जीते रहे हैं जिस समय कि लेमुलवाड़[1] का दानपत्र लिखा गया था। इसलिए नीतिवाक्यामृतको उनकी बहुत बाल्यकालकी रचना मानना होगा जो कि उसकी प्रौढ़ता गम्भीरताको देखते हुए ठीक नहीं जँचता।

नीतिवाक्यामृतकी प्रशस्तिमें सोमदेवने अपनेको 'महेन्द्रमातलि-संजल्प' ग्रन्थका भी कर्त्ता बतलाया है। यह ग्रन्थ अभी तक नहीं मिला है, परन्तु इसका नाम भी उनके और महेन्द्रदेवके परिचयकी ओर संकेत करता है। आश्चर्य नहीं जो उक्त ग्रन्थमें कन्नौज-नरेश महेन्द्रदेव और उनके सारथीका ही राजनीतिसम्बन्धी कथोपकथन लिपिबद्ध किया गया हो। 'मातलि' शब्द इन्द्रके सारथीके अर्थमें और सारथी मात्रके लिए व्यवहृत होता है। महेन्द्र-मातलिका प्रयोग भी श्लिष्ट जान पड़ता है। महेन्द्रसे देवराज इन्द्र और कन्नौजनरेश महेन्द्रदेव दोनोंका बोध हो सकता है।

महेन्द्रदेव द्वितीयकी प्रेरणासे नीतिवाक्यामृत लिखा गया होगा, इसकी संभावनाको एक और उल्लेखसे बल मिलता है।

प्रथम महेन्द्रदेवके पुत्र और द्वितीय महेन्द्रदेवके पितृव्य महीपालदेवके दो शिलालेख[2] वि० सं० ९७१ और ९७४ के मिले हैं। राष्ट्रकूट इन्द्रराज तृतीय (नित्यवर्ष) से इसका युद्ध हुआ था जिसमें राठोड़ोंके कथनानुसार महीपाल हार गया था। 'चण्डकौशिक' नाटककी प्रस्तावनामें आर्य क्षेमीश्वरने लिखा है—

"आदिष्टोस्मि श्रीमहीपालदेवेन यस्येमां पुराविदः प्रशस्तिगाथामुदाहरन्ति—

उन महीपालदेवने मुझे आज्ञा दी है, पुराविद् लोग जिनकी इस प्रशस्ति गाथाको उद्धृत करते हैं

यः संश्रित्य प्रकृतिगहनामार्यचाणक्यनीतिं जित्वा नन्दान्कुसुमनगरं चन्द्रगुप्तो जिगाय।
कर्णाटत्वं ध्रुवमुपगतानद्य तानेव हन्तुं दोर्दर्पाढ्यः स पुनरभवच्छीमहीपालदेवः॥

अर्थात् जिस चन्द्रगुप्तने स्वभावसे ही गहन आर्य चाणक्यकी नीतिका आसरा लेकर नन्दको जीता और कुसुमपुर (पटना) में प्रवेश किया, वही चन्द्रगुप्त कर्नाटकमें जनमे हुए उन्हीं नन्दों (राष्ट्रकूटों) को मारनेके लिए फिरसे महीपालदेवके रूपमें अवतरित हुआ है।

इससे मालूम होता है कि राठोड़ोंपर चढ़ाई करते समय महीपालने आर्य चाणक्यकी नीति अर्थात् चाणक्यके अर्थशास्त्रका अवलम्बन किया था और उसे आर्यक्षेमीश्वर प्रकृति-गहन बतलाते हैं, तब आश्चर्य नहीं जो उनके उत्तराधिकारी महेन्द्रपालदेव (द्वितीय) ने उसी गहन अर्थशास्त्रको सोमदेवसूरिसे कहकर सुगम और लघु बनानेके लिए कहा हो।

सोमदेवसूरिने यशस्तिलककी रचना राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीयके समयमें उनके चौलुक्य-वंशी सामन्त वद्दिगकी राजधानीमें की थी और उनके पुत्र अरिकेसरीने अपने पिताके बनवाये हुए 'शुभधाम जिनालय' के लिए सोमदेवको दान भी दिया था। ऐसी दशामें प्रश्न होता है कि सोमदेव दक्षिण कर्नाटकसे इतनी दूर उत्तरके कन्नौजके राजाओंके सम्पर्कमें कैसे आये होंगे?

१—देखो, जैनसाहित्य और इतिहास पृ० ९०-९२ २—इं० ए० जिल्द १२, पृ० १९३-९४

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

डा० राघवनने बतलाया है कि राष्ट्रकूटोंका कन्नौजके प्रतिहारोंसे बहुत सम्बन्ध रहा है। ऊपर जिस महीपालदेवका उल्लेख किया गया है, म० म० प्रो० मोराशीके अनुसार उसे राष्ट्रकूट गोविन्द चतुर्थकी कन्या ब्याही गई थी[१] और इसीके समय में वि० सं० ९७१ में राष्ट्रकूट इन्द्र तृतीयने कन्नौजको नष्ट-भ्रष्ट किया था। कन्नौजके इस आक्रमणमें चौलुक्य समन्त नरसिंहने भाग लिया था जिसके पोते बद्दिगकी राजधानीमें यशस्तिलक पूर्ण हुआ था। बद्दिगके पिता अरिकेसरी जैनधर्मके अनुयायी थे, संभव है पितामह नरसिंह भी जैनधर्मपर प्रीति रखने वाले हों और इसलिए उनकी प्रेरणा या प्रार्थनासे सोमदेवके संघका दक्षिणकी ओर आना सर्वथा संभव है। पहले वे उत्तर भारतमें ही रहे होंगे।

सोमदेवके दादा गुरु यशोदेव गौडसंघके थे। मैंने उस समय कल्पना की थी कि कर्नाटकका गोल्लदेश ही शायद गौड हो; परन्तु डा० राघवनने बतलाया है कि गौडसंघ गौड या बंगालका ही होगा। और अब यह मुझे भी ठीक मालूम होता है।

आचार्य जिनसेनके पुन्नाट संघके विषयमें विचार करनेके बादसे मैं इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि जिन जैन संघोंके नाम देशवाची हैं वे उस देशसे बाहर अन्यत्र जाने पर ही उस नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। पुन्नाट (कर्नाटक) का संघ पुन्नाटसे बाहर जब काठियावाड़में जा रहा, तब पुन्नाट संघ कहलाने लगा। संघोंको माथुरसंघ, लाडबागड़ संघ आदि नाम भी इसी तरह प्राप्त हुए हैं। सो यशोदेवका संघ पहले गौड़देशमें होगा और वहाँसे निकलनेपर ही वह गौडसंघ कहलाया होगा।

म० म० ओझाजीके अनुसार प्राचीन कालमें गौड[२] नामके दो देश थे। एक तो पश्चिमी बंगाल और दूसरा उत्तरी कोसल अर्थात् अवधका एक भाग। कन्नोजका साम्राज्य उस समय बहुत दूर दूर तक फैला हुआ था, गौडपर भी उसका अधिकार रहा है, अतएव यशोदेवका गौडसंघ उस समयकी प्रसिद्ध राजधानी कन्नोजमें विहार करते करते पहुँच सकता है और प्रतीहार राजाओंके सम्पर्कमें आ सकता है। सोमदेवसूरि पर भी कन्नोज-नरेशकी दृष्टि पड़ सकती है और वे उनसे अपने लिये नीतिवाक्यामृतकी रचना करा सकते हैं।

सारांश यह कि (१) नीतिवाक्यामृतकी रचना कन्नोजके प्रतिहारवंशी राजा महेन्द्रपालदेवकी प्रेरणासे हो सकती है और वह बहुत करके द्वितीय महेन्द्रपालदेव होगा। (२) सोमदेवका संघ मूलमें गौड देशका था, यशोदेवके नेतृत्वमें वह गौडसे बाहर कन्नोज तरफ गया होगा और वहाँ यशोदेवके प्रशिष्य सोमदेवके पाण्डित्यका महेन्द्रदेवपर प्रभाव पड़ा होगा। (३) राष्ट्रकूटों और चालुक्य सामन्तोंके परिचय या प्रार्थनासे सोमदेव उत्तरसे ही दक्षिणकी तरफ आकर रहे होंगे। [३-७-४४ बम्बई]

१—राजशेखरकी कर्पूरमंजरीका कुन्तलेश्वर वल्लभराज राष्ट्रकूट गोविन्द चतुर्थ था।

२—राजपूतानेका इतिहास, पहला खंड, पृ० २४०

Ac. Gunratnasuri MS　　Jin Gun Aradhak Trust

भट्टारक यशःकीर्ति

[ले०—श्रीयुत पं० परमानन्द जैन शास्त्री]

दिगम्बर सम्प्रदाय में यशःकीर्ति नाम के अनेक विद्वान् हो गए हैं*। परन्तु यहां जिन यशःकीर्ति का परिचय पाठकों को कराया जा रहा है वे उन सबसे भिन्न प्रतीत होते हैं। यह यशःकीर्ति भट्टारक थे, जो काष्ठासंघ के माथुरान्वय और पुष्करगण में भट्टारक सहसकीर्ति के पट्ट पर प्रतिष्ठित होनेवाले भ० गुणकीर्ति के शिष्य और लघु भ्राता थे। जैसा कि उनके 'हरिवंश पुराण' की प्रशस्ति के निम्न पद्यों से प्रकट है :—

इह कट्ठसंघे माहुरहं गच्छे, पुक्खरगणे मुणिवर चइ वि लच्छे।
संजायो वीरजिणक्कमेण, परिवाडिए जइवर णिहयएण
सिरिदेवसेणु तह विमलसेणु मुणिधम्मसेणु तह भावसेणु।
तहो पट्टि उवण्णउ सहसकित्ति, अणवरय भमिय जए जासु कित्ति।
तहो सीसु सिद्ध गुणकित्ति णामु, तव तावें जासु सरीरु कामु।
तहो बंधउ जस मुणि सीसु जाउ, आयरिय सुपणासिय दोसु राउ॥"

यह पट्ट गोपाचल (ग्वालियर) में प्रतिष्ठित था और इसने तोमरवंशीय राजा डूंगरसिंह के राज्य में खूब प्रसिद्धि प्राप्त की थी। राजा डूंगरसिंह इस वंश का बहुत प्रतापी एवं पराक्रमी शासक हुआ है। इसे जैन धर्म से विशेष प्रेम था। इसकी पट्ट महिषी का नाम

---

*एक यशःकीर्ति जगत्सुन्दरी प्रयोगमाला के कर्ता जो बागड़संघ के भ० विमलकीर्ति के शिष्य और रामकीर्ति के प्रशिष्य थे।

दूसरे भ० विश्वभूषण के शिष्य जो माथुर संघ के नंदी बरगण के हैं।

तीसरे प्रबोधसार के कर्ता हैं।

चौथे माघनन्दि तथा गोपालनन्दि के शिष्य; इनका परिचय 'जैन लेख संग्रह के ५५ वें लेख में मिलता है।

पांचवें भ० सकलकीर्ति के शिष्य और मूलसंघ के भट्टारक पद्मनन्दी के प्रशिष्य तथा भ० शुभचन्द्र के गुरु थे।

छठवें यशःकीर्ति 'धर्मशर्माभ्युदय' की 'संदेहध्वान्तदीपिका' टीका के कर्त्ता, जो भ० ललितकीर्ति के शिष्य थे।

सातवें भ० रतनचन्द्र के दीक्षित शिष्य और भ० गुणचन्द्र के गुरु।

आठवें नेमिचन्द्र के पट्ट शिष्य।

नौवें हेमचन्द्र के प्रपट्ट और पद्मनन्दी के पट्ट शिष्य तथा जो भ० खेमकीर्ति के गुरु थे।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

चंदादे था जो गुणवती और रूपवती थी। इनके पुत्र का नाम कीर्तिसिंह था,× जो अपने पिता के समान ही सुयोग्य शासक और पराक्रमी वीर था। इनके राज्यकाल में कितनी ही जैन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की गई, और जैन मंदिरों तथा जैन ग्रन्थों का निर्माण-कार्य हुआ था। भट्टारक यशःकीर्ति ने वि० सम्वत १४८६ में इन्हीं राजा डूंगरसिंह के राज्यकाल में कविवर विबुध श्रीधर के 'भविष्यदत्तचरित्र' संस्कृत की एक प्रति अपने ज्ञानावरणी कर्म के क्षयार्थ लिखाई थी जैसा कि उसकी निम्न लिखित पुष्पिका से प्रकट है :—

"संवत् १४८६ वर्षे आषाढवदि ६ गुरुदिने गोपाचलदुर्गे राजा डूंगरसीह (सिंह) राज्य-प्रवर्तमाने श्रीकाष्ठसंघे माथुरान्वये पुष्करगणे आचार्यश्रीसहसकीर्तिदेवास्तत्पट्टे आचार्य-श्रीगुणकीर्तिदेवास्तच्छिष्यश्रीयशःकीर्तिदेवास्तेन निजज्ञानावरणीकर्मक्षयार्थं इदं भविष्य-दत्तपंचमीकथा लिखापितम् ॥"

ऊपर की लेखक-पुष्पिका से स्पष्ट है कि सं० १४८६ में डूंगरसिंह का राज्य था, और यह राज्यसत्ता उक्त संवत् से पहले ही किसी समय राजा डूंगरसिंह के हाथ में आई थी, तथा सं० १५१० के मूर्ति-लेख से यह भी प्रकट है कि उस समय तक ग्वालियर में डूंगरसिंह का ही राज्य था, किन्तु सं० १५२१ से पहले ही राज्यसत्ता उनके पुत्र कीर्तिसिंह के हाथ में आ गई थी*। भट्टारक यशःकीर्ति सं० १४८६ तक भट्टारक पद पर आसीन नहीं हुए थे। यशःकीर्ति विद्वान् थे, और अपभ्रंश भाषा में ग्रन्थ-रचना करने में प्रवीण थे। कविवर रइधू ने जो इनके ही समकालीन थे, यशःकीर्ति के शिष्यों के अनुरोध से कितने ही ग्रन्थों की रचना की है और ऐसा करने में यशःकीर्ति ने अनुमति प्रकट की है। रइधू ने अपने सन्मति चरित्र में यशःकीर्ति का निम्न शब्दों में उल्लेख किया है :—

"भव्वकमल सरबोह पयंगो, वंदिवि सिरि जसकित्ति असंगो।"

रइधू ने अपना सुकौशलचरित्र सं० १४९६ में बनाया था उससे ठीक एक वर्ष बाद भ० यशःकीर्ति ने सं० १४९७ में पाण्डवपुराण की रचना की है। इनके जीवन सम्बन्ध की यद्यपि किसी घटना का और न जीवन चर्या-विषयक ही कोई उल्लेख मुझे प्राप्त हो सके। परन्तु फिर भी इनका समय विक्रम की १५ वीं शताब्दि का उत्तरार्ध सुनिश्चित है।

भ० यशःकीर्ति ने 'पाण्डव पुराण' की रचना साधु वील्हा के पुत्र हेमराज की प्रेरणा से की है। यह योगिनीपुर (दिल्ली) के निवासी थे और अग्रवाल वंश में उत्पन्न हुए थे। ग्रन्थ-कर्त्ता ने यह ग्रन्थ उन्हीं के नामांकित किया है। ग्रन्थ में हेमराज की प्रशंसा करते हुए

× तहिं डूंगरिंदु णामेण राउ, अरिगण सिरग्गि संदिन्न घाउ।
तुंवर वंसहं जो जीणिंदु, जि पवलहं मिच्छहं खणिउ कंदु।
तह पट्ट धरणि थं रूव लच्छि, णामें चंदादे अइ सुदरिथ।
तहु पुत्त कित्ति सिंघु जि गुणल्लु, जो राइणीय जायण छइल्लु। —पद्मपुराणे कवि रइधू

*देखो अनेकान्त।

बतलाया है कि वे सत्यवादी, व्यसनरहित, जिनपूजक, पर स्त्री के त्यागी, उदार तथा परोपकारी थे, और गृहस्थ के आवश्यक कर्मों का पालन करते थे, तथा सुलतान मुबारक शाह के वे मंत्री थे।❀ इन्होंने एक जिन चैत्यालय बनवाया था। राजाओं के द्वारा मान्य थे और पुत्र-पौत्रों आदि से सम्पन्न थे×। इनकी माता का नाम धेनाही और पिता का नाम साधु-वील्हा था, तथा धर्मपत्नी का नाम गंधा था। वह बड़ी सती साध्वी और धर्मपरायण थी। ग्रन्थकर्त्ता ने ग्रंथ को प्रत्येक संधि के शुरू में संस्कृत पद्यों में हेमराज के व्यक्तित्व की प्रशंसा करते हुए उनके लिये मंगल की कामना की है। उन पद्यों पर से हेमराज की धर्मनिष्ठा और उदारता का बहुत कुछ परिचय मिल जाता है, वे दीन दुखियों का दुःख हरते थे और परोपकारादि सत्कर्मों में अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग करते थे। ग्रन्थ में इनके कुटुम्ब का विस्तृत परिचय दिया गया है जिसे फिर कभी अवसर मिलने पर देने का विचार है।

इनकी दूसरी रचना 'हरिवंशपुराण' है जिसे उन्होंने वि० सं० १५०० में समाप्त किया है। यह ग्रन्थ भी अग्रवालवंशी गर्गगोत्रीय साहू दिवड्ढा के अनुरोध से बना है और उन्हीं के नामांकित किया है। ग्रन्थकर्ता ने अन्तिम प्रशस्ति में ग्रन्थ बनवाने वाले दिवड्ढा साहू के वंशादि का परिचय दिया है। और बतलाया है कि वे योगिनीपुर के वासी थे, जहां पर पं० डूंगरसिंह जो धर्मपक्ष का समर्थन किया करते। साहु दिवड्ढा सेठ सुदर्शन के समान शुद्ध मनवाले थे, बड़े ही धर्मपरायण, श्रावक के आवश्यक कर्तव्यों के पालक, दयालु, एकादश प्रतिमाओं के अनुष्ठाता द्वादश व्रतों के धारक, शरीर से आत्मा को भिन्न समझने वाले भेद विज्ञानी थे। उन्होंने अपने पवित्र मन से ही यह हरिवंश चरित्र बनवाया है।

तीसरी रचना 'आदित्यवार कथा' है जिसे रविव्रत कथा भी कहते हैं। इससे पहले की कोई दूसरी रविव्रत कथा मेरे देखने में नहीं आई।

'चंदप्पहचरउ' भी इन्हीं का बतलाया जाता है, परन्तु ग्रन्थ को देखने से वह इन यशःकीर्ति की कृति मालूम नहीं होती; क्योंकि चंद्रप्रभचरित में यशःकीर्ति ने गणि कुन्दकुन्द, मुनीन्द्र, समन्तभद्र, अकलंकदेव, देवनन्दि, जिनसेन नाम के आचार्यों का उल्लेख किया है। परन्तु पांडवपुराण और हरिवंशपुराण में इन आचार्यों का कोई उल्लेख नहीं किया। चंद्रप्रभचरित्र में उसके रचना का काल भी नहीं बतलाया गया जब कि पाण्डव पुराणादि में है।

❀सुरतान मबारख तणइं रज्जे, मंतितणो थिउ पिय भार कज्जे। —पाण्डवपुराण प्रशस्ति

× जेण करावउ जिण चेयालउ, पुण्णहेउ चिउ रय पर कालउ। —पाण्डवपुराण प्रशस्ति

प्रीणाति यः कुवलयं सकलं समुद्यत्योभिक्षत्यमृतमस्तसमस्ततापं।
सौम्यद्युतिः स जिनराजसुपूर्णचन्द्रः श्रीहेमराज हृदयाब्धि समृद्धयेऽस्तु ॥१॥
वदान्यो बहुमानश्च सदोद्योतो जिनार्चने।
परस्त्री विमुखो नित्यं हेमराजः स नंदतात् ॥२॥

ये दोनों पद्य पाण्डवपुराण में दूसरी संधि के बाद दिये हुए हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

दूसरे चंद्रप्रभचरित्र की रचना गुजरात देश के उम्मत गांव के हूंबड कुलावतंश कुअरसिंह के पुत्र सिद्धपाल के अनुरोध से की गई है, जब कि पाण्डवपुराणादि की रचना देहली के सज्जनों की प्रेरणा से हुई हैं।

तीसरे चंद्रप्रभचरित्र की संधियों में—"इय सिरि चंदप्पहचरिए महाकइ जसकित्ति विरइए सिद्धपाल सवणभूसणे सिरि चंदप्पह सामिणिव्वाण गमणो णाम एयारहमो (परिच्छेओ) समत्तो।" जब कि हरिवंशादि उभय ग्रन्थों की प्रशस्तियों में यशःकीर्तिके साथ महाकवि विशेषण लगा हुआ नहीं है उनमें भ० गुणकीर्ति का शिष्य यशःकीर्ति ऐसा उल्लेख पाया जाता है जैसा कि उसकी निम्न पुष्पिका से प्रकट है—"इय पंडुपुराणे सयलजणमणसवणसुहपरे सिरि-गुणकित्ति शिष्य जसकित्ति विरइए साधुवील्हा पुत्त हेमराज णामंकिए—।" चूंकि चंदप्पहचरिउ में ऐसा कोई उल्लेख नहीं पाया जाता, जिसमें वह सिद्धपाल के नामांकित किया हो और गुणकीर्ति का नाम भी स्पष्ट रूप में लिखा हुआ हो। पाण्डवपुराणादि के समान चंद्रप्रभ-चरित में रचनाकाल भी दिया हुआ नहीं है। इन्हीं सब कारणों से उक्त ग्रन्थ को भ० यशःकीर्ति का मानने में संदेह हो जाता है। सम्भव है, अन्वेषण करने पर यह ग्रन्थ इन यशःकीर्ति का सिद्ध हो जाय अथवा अन्य किसी दूसरे यशःकीर्ति का बनाया हुआ ही सिद्ध हो, कुछ भी हो, इस विषय में खोज होने की ज़रूरत है।

भंडारा जिला में जैनपुरातत्त्व

[ले०—श्रीयुत बाबू कामता प्रसाद जैन एम० आर० ए० एस०]

मध्यप्रान्त के नागपुर डिवीज़न में एक जिला भंडारा है। बारहवीं शताब्दि के एक शिलालेख में इसका नाम 'भानार' लिखा मिला है। इस जिले में कई प्राचीन स्थान हैं; जिनमें अद्यार या अडयाल नामक स्थान पर जो भंडारा से दक्षिण की ओर १७ मील दूर है, एक प्राचीन जैन मंदिर महावीर स्वामी का है। वहां भूगर्भ से एक पाषाणमूर्ति भ० पार्श्वनाथ की निकली थी। किन्तु भंडारा खास में भी जैनों के प्राचीन सम्बन्ध की द्योतक कई कीर्त्तियाँ उपलब्ध हैं। भंडारा में श्रीधन्नालाल सीतारामजी नाकाडे एक उत्साही बन्धु हैं। उनकी यह तीव्र आकांक्षा है कि भंडारा जिले के जैनपुरातत्त्व का उद्धार हो। किन्तु हतभाग्य से अपने यहां ऐसी कोई संस्था नहीं है जो इस कार्य को करना अपना कर्त्तव्य समझती हो! आज भंडारा ही क्या? अनेक स्थानों पर जैन कीर्त्तियां पड़ी हुई उद्धार की प्रतीक्षा कर रही हैं। श्रीनकाडेजी ने भंडारा का जो विवरण लिख कर भेजा है उसका सार यहां दिया जाता है। खंडित मूर्तियों के फोटो लिवाकर भेजने की कृपा भी आपने की है; जिसके लिये हम उनके आभारी हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

श्रीनकाडेजी ने लिखा है कि भंडारा पुराने जमाने में भंडार बस्ती नाम से प्रसिद्ध था। यदि बस्ती का अर्थ जैनमंदिर लिया जावे तो यह नाम ही भंडारा के जैनत्व का सूचक है और जब हम भंडारा और उसके आसपास जैन कीर्त्तियों को बिखरा पाते हैं तो, इस जन श्रुति को तथ्यपूर्ण पाते हैं कि भंडारा जैन बस्ती था। सन् १७३६ में यहां के शासक श्रीदौलतसिंहजी थे; जिनकी रानी रतनकुमारी थी। इस राज दम्पति ने नागपुर के राजा रघुजी भोंसले की सहायता की थी और दोनों ही रणभूमि में वीरगति को प्राप्त हुए थे। तब से भंडारा स्वतन्त्र राज्य न रह कर नागपुर राज्य में मिला लिया गया।

पुराने जमाने में लोग कहते हैं कि, यहां नन्द नाम का राजा राज्य करता था, जिसका उत्तराधिकारी यदु हुआ। यदु के पश्चात् भानु नाम का राजा प्रसिद्ध हुआ। इन्हीं भानु राजा के नाम से भानुनगर बसाया गया। भानुनगर का अपभ्रंश 'भानार' है, जो भंडारा का पुराना नाम है।

भंडारा का किला बहुत पुराना है--उसके परकोट की दीवाल इतनी चौड़ी है कि उस पर मोटर चल सकती है। किले में ऊपर चांदशाह की कब्र है। इस किले में पांच-छः बुर्ज़ हैं। आठ-नौ महीने हुये जब एक बुर्ज़ गिर गया और उसका जीर्णोद्धार किया जाने लगा। उस समय मलवे को खोदने में मजदूरों को दो-तीन दिगम्बर जैन मूर्तियाँ मिलीं। मलवे को हटाते हुए कैदियों की असावधानी से ये मूर्तियां खंडित हो गईं हैं। एक खड्गासन मूर्ति ५-६ फीट ऊंची है— खेद है, उसका शीश खंडित है। किले में कैदी होशियार शिल्पी था उसने सीमेंट का शीश बनाकर मूर्ति में लगा दिया है। यह मूर्ति जेल के सामने बड़ के वृक्ष के सहारे रक्खी हुई है। मूर्ति के निम्न भाग में एक भक्त दम्पति हाथ जोड़े खड़े हैं, जो राजा और रानी हो सकते हैं। वस्त्र कमर से ऊपर नहीं हैं। स्त्री चोली पहने हुये है—उसके केशपास सुंदर और सुरक्षित हैं। मूर्ति का आसन खंडित होने के कारण उसका लेख यदि था तो नष्ट होगया है। इस मूर्ति के साथ दो अन्य मूर्तियां भी रक्खीं हुईं हैं, किन्तु वे बिल्कुल टूटी-फूटी हैं। उनमें एक संभवतः आदिनाथजी की और दूसरी २४ सी पट है। किले के अन्दर दीवारों में बहुत-सी जिन मूर्तियां लगा दीं गईं हैं। कभी कभी यहां दैवी चमत्कार दिखते थे; परन्तु पशुबलि देना जब से लोगों ने प्रारम्भ किया तभी से वह बंद हो गये। किले में एक लेख भी है; परन्तु बहुत ऊंचे पर है, इसलिए उसकी प्रतिलिपि नकाडेजी नहीं भेज सके। उस लेख की नकल यदि प्राप्त हो सके तो इस किले के इतिहास पर प्रकाश पड़े। हमने यवतमाल के श्रीमहाजनजी को लिखा है कि वह इस स्थान का निरीक्षण करें। यदि वह गये और लेख की प्रतिलिपि ले आये, तो इतिहास का अच्छा कार्य होगा। कहते हैं, इस किले में कई भोंहरे रामटेक, पवनी, अम्बागढ़ आदि की ओर गये हैं। रामटेक की ओर जो भोंहरा गया है उसी के पास से उपर्युक्त मूर्तियां मिली हैं। नकाड़ेजी को एक पुलिसमैन ने बताया था कि वह उस भौंहरे के भीतर कुछ दूर तक गया और उसने उसमें कई जैन मूर्तियां रक्खीं हुई देखी हैं। किले के भूगर्भ से लोगों को सम्पत्ति भी मिली है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

भंडारा में किले के अतिरिक्त 'खाम तालाब' भी एक प्रसिद्ध स्थान है, जिसके चारों तटों पर एक-एक पुराना मंदिर बना हुआ है। दक्षिण में देवी का, पश्चिम में दत्त का, और उत्तर में महादेव का मंदिर है। दक्षिण दिशावाले देवी के मंदिर में आदिनाथ प्रभु की एक मूर्त्ति है और दूसरी मूर्ति चौबीस तीर्थंकरों की खंडित है। मन्दिर के आगे कई सिर मूर्तियों के टूटे हुये पड़े हैं। यह किसी विधर्मी की अज्ञानता का परिणाम है। इनमें नागे लोग रहते हैं। अधिक परिताप का विषय तो यह है कि अहिंसा के अवतार तीर्थंकरों की इन मूर्तियों के आगे निरापराध बकरों की बलि चढ़ाई जाती है! यह जैन शासन के घोर अधःपतन का प्रत्यक्ष प्रमाण है। नकाड़ेजी लिखते हैं कि इस अधर्म को मेटिये! इन मूर्त्तियों के चित्र प्लेट न० २ में अङ्कित हैं।

खाम तालाब से उत्तर की ओर तीन-चार फर्लांग पर 'बालपुरीका मठ' नामक स्थान है। यहां एक मन्दिर और चार छत्रियां गुम्मजवाली हैं। छत्रियों की प्रत्येक महराव (Arch) पर हाथी, घोड़ा, मछली आदि २४ चिन्ह हैं, जो इसका जैन सम्बन्ध प्रकट करते हैं। मन्दिर में दो खंडित जिनमूर्तियां एक ओर पड़ीं हुई हैं। बाहर के सिंहद्वार के हाथी पर दो मूर्तियां ढाल-तलवार लिये अंकित हैं। अब इस मन्दिर में महादेव जी स्थापित किये गये हैं।

भंडारा जिले में करीब चार हजार जैन कलार रहते हैं; जो कलचूरी राजाओं के वंशज अनुमान किये गये हैं। परदेशी कलारों की संख्या भी ४-५ हजार है। सानगड़ी, लाखणी और अडयाल में जैन कलारों की बस्ती अधिक है।

भंडारा और पवनी वेनगंगा के तट पर बसे हुये हैं। नकाडे जी वेनगंगा को वेगवती नदी और पवनी को पोदनपुर अनुमान करते हैं। भंडारा के पास ही कई पहाड़ियों में बहुत से पुराने भोंहरों के कारण यह प्रदेश भूताचल के नाम से प्रसिद्ध था। कमठ ने भूताचल पर्वत पर ही वास किया था। अतः यह स्थान बहुत प्राचीन है।

सानगड़ी में भी जैन मूर्तियां भग्नावस्था में पड़ीं हुईं हैं। अडौल नामक ग्राम से चार मील दूर भारुल गांव है। वहां एक धीमर के घर में दो तीन जिन मूर्तियां भूगर्भ से निकली थीं, जो अब भी उसके यहां मौजूद हैं। वर्धा के श्रीहिरासाव चवडे ने उनको देखा है।

निस्सन्देह भंडारा जिला प्राचीनकाल से जैनधर्म का केन्द्र रहा प्रतीत होता है—एक समय वहाँ जैनधर्म का गौरवशाली अस्तित्व था। यदि इस जिले के जैन मन्दिरों में विराजमान जिन मूर्तियों के लेखों और शास्त्रों की प्रशस्तियों का संग्रह यवतमाल का जैन संशोधक मंडल कर सके तो इस प्रान्त का जैन इतिहास प्रकट हो सकता है। नकाड़ेजी का आभार हम पुनः स्वीकार करते हैं।

नोट—लेखक ने 'भास्कर' में प्रकाशित करने के लिये दो चित्र भी भेजे थे, पर आर्टपेपर न मिलने से हम चित्रों को प्रकाशित नहीं कर सके हैं।

—व्यवस्थापक

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

गुणभद्रप्रशस्ति

श्रीमल्लेखाचलोद्यच्छिखरगतलसत्पाण्डुकस्फारपीठे ।
देवेन्द्रानूनबाह्वोर्भरनमितमहारत्नकुम्भप्रपूर्णैः ।
दुग्धाम्भोराशिनीरैस्सकलगुणनिधिः स्नापितस्तापलोपः ।
पायाद् भव्यानजस्रं वृषभजिनपतिः श्रीपतिर्भूपतीशः ॥

देव, स्वस्ति समस्तवस्तुविस्तारकवास्तोष्पतिप्रमुखचतुर्णिकायामरविपुलतरललितमौलितल-कीलितमाणिक्यमयूखमालालंकृतक्रमकमलयुगलस्य, विंशतिसहस्रसोपानविराजमानधूलीशालाद्येकादशभूम्यभिरामधनदविरचितसमवसरणसरोजिनीविराजमानराजहंसावतारस्य, श्रीमदादिपरमेश्वरस्य मुखकमलविनिर्गतपंचास्तिकायषड्द्रव्यसप्ततत्त्वनवपदार्थपारावारपरायणश्रीमद्वृषभसेनान्वये-पारंपर्यागते श्रीमदुज्जैनीमहीकलशस्थानलिंगमहीधरं वाग्वज्रदण्डेन विस्फाट्याविष्कृ[ष्कृ]-तश्रीपार्श्वतीर्थेश्वरप्रतिच्छन्दश्रीसिद्धसेनाचार्याणां, नवलक्षतेलुंगदेशाभिरामद्राक्षारामलिंग(?)स्वयंभ्वादिस्तोत्रटंकोत्कीर्णरुन्द्रचन्द्रचन्द्रिकाविशदयशोंगश्रीचन्द्रजिनेन्द्रसम्यग्दर्शनसमुत्पन्नकौतूहल-कलितशिवकोटिमहाराजतपोराज्यस्थापनाचार्यश्रीमत्समन्तभद्राचार्याणां, सकलगुणमार्गणाभरणभूषितश्रीशिवकोटिभट्टारकाचार्याणां, यादवकुलतिलककुमारदीक्षितारिष्टनेमिक्रीडानिवासरैवतपर्वतकाञ्चनगुहायां श्रीमत्सिद्धचक्रयंत्रोद्धारभारधुरंधरश्रीवीरसेनभट्टारकाचार्याणां, धवलमहाधवलजयधवलविजयधवल(?)महापुराणादिसकलग्रंथकर्तृश्रीजिनसेनाचार्याणां, बद्धाष्टकर्मनिर्घाटनपटुशुद्धेद्धराद्धान्तप्रभाबोधितनवखण्डमण्डलश्रीनेमिसेनसिद्धान्तिकाचार्याणां, अतीवघोरतरसंसारतपनसंतप्तत्रैलोक्यप्राणिगणतापनिवारणकारणछत्रायमाणश्रीछत्रसेनाचार्याणां, उग्रदीप्ततप्तमहातपोनियुक्तजिनसेनाचार्याणां, संयमसम्पन्नश्रीलोलसेनभट्टारकाचार्याणां, नवविधब्रह्मचर्यव्रतपूर्वकपरब्रह्मध्यानाधीनब्रह्मसेनमहातपोधनानां, षड्जीवनिकायकैरवामृतस्यन्दिचन्द्रोदयायम-[मा]नोदयसेनमुनीश्वराणां, उभयपरिग्रहत्यक्तोभयतपःकामिनीकन्दर्परूपावतारद्वादशांगचतुर्दशपूर्वपंचप्रज्ञप्तिपंचविधदृष्टिवादांगादिसकलश्रुतपारावारपरायणसकलगुणगणाभरणगुणभद्राचार्याणां, भव्यजनकमलसूरसूरसेनाचार्याणां, काष्ठसंघसंश[श्र]यतपोनिमग्नाशाधरश्रीमूलसंघोपदेशकपितृवनस्वपर्यात्मक (?)म [ब]लभद्रभट्टारकाचार्याणां, सारत्रयसम्पन्नश्रीदेवेन्द्रसेनमुनिमुख्यानां, विहलिनगरीप्रवेशसमयशिरःकम्पारिष्टखानबाणबाधाप[ह]रणगंगामध्यपट्टाभिषेकनिरूपकत्रैविद्यकुमारसेनयोगीश्वराणां, अंगवादिविभंगशीलकलिंगवादिकालानलकाश्मीरवादिकल्पान्तभीष्मनेपालवादिशापानुग्रहसमर्थगौडवादिगण्डभेरुण्डगूर्जरवादिमेघस्फूर्जज्जंझानिलहम्मीरवादिब्रह्मराक्षसचोलवादिकोलाहलद्राविडवादिताडनसुशीलतेलुंगवादिकलंकारिदुस्तरवादिमस्तका[क]शूलबोड्डिदेशेश्वरगजपतिसभासन्निविष्टप्रचण्डयमदण्डशुण्डालदण्डखण्डनकालदण्डमण्डलदोर्दण्डमण्डितश्रीदुर्लभसेनाचार्याणां, शौरशाक्तिकापालिकचार्वाकमीमांसकवेदान्तवैशेषिकभाट्टप्रभाकरकाणादपत्याद्यखिलतार्किकदुस्तरतर्ककर्कशबौद्धद्वात्रिंशद्घटवादविघटनपटुगौडवादिगण्डभेरुण्डधरसेनाचार्याणां, तपःश्रीकर्णावतंसश्रीषेणभट्टारकाचार्याणां, दुर्वारदुर्वादिसर्वगर्वपर्वतचूर्णीकृत[करण]-कुलिशायमानदक्षपक्षराजलक्ष्मीसेनभट्टारकाचार्याणां, नवलक्षधनुर्धरादिशां[सां]द्रसप्तलक्षदक्षिणकर्णाटकराजेन्द्रचूडामणिमौक्तिकमालाप्रभामरधुनीजलप्रवाहप्रक्षालितचरणनखसोमसेनभट्टा-

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

रकाचार्याणां, अंकुगुलेश्वरपुराद्भरवत्सनगरीराजाधिराजराजपरमेश्वरश्रीयवनराजशिरोमणिमहम्मुदसाहसुरत्राणसमस्यपुराणद(?)खिलदृष्टिनिपातेनाष्टादशवर्षप्रायप्राप्तदेवलोकश्रीश्रुतवीर्यस्वामिनां, जम्मेरुपुरदंजिनेश्वर(?)भूष्टाष्टभूष्टीकृतानलविहितयज्ञोपवीतवादविजितजयसिंहब्रह्मदेवसद्धर्मशर्म - कर्मनिर्मलान्तःकरणश्रीधरसेनाचार्याणां, हावभावविलासविभ्रमशृंगारभंगीसमालिंगितबालमुग्धयौवनविदग्धाखिलब्रह्मचर्यव्रतोपेतदेवसेनभट्टारकाचार्याणां, पट्टोदयाचलप्रभाकरश्रीमूलसंघवृषभसेनान्वयसेनगणाग्रगण्यानां, श्रीमद्रायराजगुरुवसुन्धराचार्यवर्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्तिवंकडिकडिवाणपरग्रहविक्रमादित्यमध्याह्नकल्पवृक्षाणां, पुष्करगच्छबिरुदावलीराजमाननित्याद्येकादशवादिप्रथमवचनखण्डनप्रचण्डवचनरचनाधीश्वरषड्दर्शनस्थापनाचार्यषट्तर्कचक्रेश्वरडिल्लिसिंहासनाधीश्वरसाभिमानवादीभसिंहत्रैविद्यचक्रेश्वरमार्तण्डमण्डलायमानसोमसेनभट्टारकाचार्याणां, पट्टवार्धिवर्धनैकपूर्णचन्द्रायमाणश्रीमूलसंघसंघादिप्रमुखश्रीजिनेश्वरश्रीपादभक्तिभर[रि]तश्रीमद्गुणभद्रभट्टारकाणां तपोराज्याभ्युदयसमृद्धिसिध्यर्थं श्रीमदक्षयमोक्षहेतुभूततपोराज्योपचयार्थं ....॥

यह प्रशस्ति जैन मठ मूडबिद्री के नं० ३४४ की एक ताडपत्रीय हस्तलिखित प्रति में उपलब्ध हुई है। यद्यपि इसमें प्रतिपादित कुछ बातें प्रचलित मान्यता के खिलाफ पड़ती हैं। फिर भी इसमें ऐसी भी बहुतसी बातें मौजूद हैं, जो कि अनुसन्धान प्रेमी विद्वानों के काम की हैं। इसी आशय से यह प्रशस्ति 'भास्कर' में दी जा रही है। इसमें कोष्ठक में जो पाठ दिये गये हैं वे मूल के नहीं हैं, किन्तु मेरे अपने हैं। —के० भुजबली शास्त्री, मूडबिद्री

तत्त्वार्थसूत्र की परम्परा

[ले०—श्रीयुत न्यायाचार्य पं० दरबारीलाल जैन, कोठिया]

'तत्त्वार्थसूत्र' आज जितना विचार का विषय बना हुआ है, शायद वह उतना पहले भी विचारणीय रहा हो। इस पर दर्जनों टीकाएँ तो दिगम्बर परम्पराके विद्वानोंकी हैं और दर्जनों ही श्वेताम्बरीय विद्वानों की। इस तरह वह थोड़े से पाठ भेद के साथ दोनों परम्पराओंमें प्रतिष्ठित एवं मान्य है। जैन वाङ्मयकी अनेक अमर कृतियोंमें यह गौरव प्रायः अकेले तत्त्वार्थसूत्रको प्राप्त है। आचार्य उमास्वातिने इस छोटीसी दशाध्यायात्मक अनूठी कृतिमें समस्त जैन तत्त्वज्ञानको संक्षेपमें गागरमें सागरकी तरह भरकर अपने विशाल और सूक्ष्म ज्ञान-भण्डारका[1] परिचय दिया है। यही कारण है कि जैन परम्परामें तत्त्वार्थसूत्र-

१ दिगम्बर परम्परामें इन्हें 'श्रुतकेवलिदेशी' माना गया है। देखो, नगर ताल्लुकेका शिलालेख नं० ४६ और श्वेताम्बर परम्परामें 'पूर्ववित्' के अर्थमें 'वाचक' कहा गया है। देखो, पं० सुखलालजी द्वारा संपादित तत्त्वार्थसूत्र 'परिचय' पृ० १८।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

का बहुत बड़ा महत्व है और उसका वही स्थान है जो हिन्दू सम्प्रदायमें गीताका। यद्यपि तत्त्वार्थसूत्रकी इस अपनी महत्ताको देखकर उसे दोनों—दिगम्बर और श्वेताम्बर परम्पराओंने अपनाया और अपना सिद्ध करने के लिये अपने ढंगसे व्याख्याएँ, टीकाएँ भाष्य, वृत्ति आदि लिखीं तथा अपनी परम्पराके मत भेद प्रदर्शक कतिपय सिद्धान्त उसके सूत्रोंका अवलम्बन लेकर फलित किये, परन्तु इतना होते हुए भी विचारका प्रायः जितना उदारक्षेत्र पहले रहा उतना आज नहीं रहा।

आजसे कोई लगभग १५ वर्ष पहले श्वेताम्बर विद्वान् श्रीमान् पण्डित सुखलालजीने सर्व प्रथम तत्त्वार्थसूत्र और उसकी व्याख्याओं तथा उसके कर्तृत्व-विषय में अपने गवेषणापूर्ण दो लेख लिखे थे और जिनके द्वारा अद्यावधि सर्वतो अधिक प्रकाश डालते हुए तत्त्वार्थसूत्र और उसके कर्त्ताको तटस्थ परम्पराका सिद्ध किया था[1]—उन्हें मात्र दिगम्बर या श्वेताम्बर परम्पराका नहीं बतलाया था। इसके कोई चार वर्ष वाद (सन् १९३४) में श्वेताम्बर विद्वान् उपाध्याय श्रीआत्मारामजीने कतिपय श्वेताम्बर आगमोंके सूत्रोंके साथ तत्त्वार्थसूत्रके सूत्रोंका समन्वय करते हुए 'तत्त्वार्थसूत्रजैनागमसमन्वय'[2] नामसे एक ग्रन्थ लिखा और तत्त्वार्थसूत्रको श्वेताम्बर परम्पराका ग्रन्थ प्रसिद्ध किया। जब यह ग्रन्थ उक्त श्रीमान् पण्डितजीको प्राप्त हुआ तो अपने पूर्व चिरंतन गवेषणापूर्ण तत्त्वार्थसूत्रको तटस्थ-परम्पराका ग्रन्थ माननेके विचारको छोड़कर उसे उन्होंने मात्र श्वेताम्बर परम्पराका प्रकट किया और यह कहते हुए कि "उमास्वाति श्वेताम्बर परम्पराके थे और उनका सभाष्य तत्त्वार्थ सचेल पक्षके श्रुतके आधारपर ही बना है।" ......"वाचक उमास्वाति श्वेताम्बर परम्परामें हुए दिगम्बरमें नहीं...।" निःसंकोच उसे श्वेताम्बर परम्पराका होनेका अपना निर्णय भी दिया है[3]। इस तरह पर एक बहुत प्राचीन और महत्वपूर्ण ग्रन्थको दूसरी परम्पराके द्वारा सर्वथा अपना सिद्ध करने और उसे वैसा बनानेके क्रियात्मक प्रयत्नको देखकर दिगम्बर परम्पराके विद्वानोंने भी ऐसी हालतमें चुप बैठना ठीक नहीं समझा और उन्होंने उनके इस प्रयत्नका उत्तर दिया।

सर्व प्रथम पं० परमान्दजी शास्त्रीने 'तत्त्वार्थसूत्रके बीजोंकी खोज' शीर्षक एक गवेषणापूर्ण लेख लिखा[4] और उसके द्वारा उन्होंने दिगम्बर परम्पराके प्राचीन आगम ग्रन्थोंके उसमें सप्रमाण बीज प्रस्तुत करके उसे दिगम्बर परम्पराका बतलाया। श्रीमान् पं० फूलचंद-जी सिद्धान्त-शास्त्रीने भी 'तत्त्वार्थसूत्रका अन्तःपरीक्षण' शीर्षक दो लेख लिखे[5] और

१ देखो, अनेकान्त वर्ष १ किरण ६, ७, ११, १२ 'तत्त्वार्थसूत्रके प्रणेता उमास्वाति' और 'तत्त्वार्थसूत्रके व्याख्याकार और व्याख्याएँ' शीर्षक दो लेख।

२ यह ग्रन्थ लाला शादीराम गोकुलचन्द जौहरी, चांदनी चौक देहली ने प्रकाशित कराया है।

३ देखो, पंडित सुखलालजी द्वारा संपादित 'तत्त्वार्थसूत्र' लेखकका वक्तव्य पृ० १८ और 'परिचय' पृ० २४

४ देखो, अनेकान्त वर्ष ४ किरण १।

५ देखो, अनेकान्त वर्ष ४ किरण ११-१२ और अनेकांत वर्ष ५ किरण १-२

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

उनके द्वारा उन्होंने अन्तः परीक्षण करके यह सिद्ध किया कि तत्त्वार्थसूत्र दिगम्बर मान्यताओंसे सम्बन्ध रखने वाला है। अभी गत अक्तूबर (सन् १९४४) में कलकत्तामें हुए वीर शासन महोत्सवके अवसर पर श्रीमान् पं० नाथूरामजी प्रेमीने[1] अपनी खोजके आधार पर तत्त्वार्थसूत्र और उसके कर्त्ताको यापनीयसंघका[2] बतलाया। इस प्रकार तत्त्वार्थसूत्रकी परम्पराका अनिर्णय एक उलझी हुई गुत्थीके रूपमें चला आ रहा है।

गत दिनों जब मैं प्रो० हीरालालजी एम० ए० के 'जैन इतिहासका एक विलुप्त अध्याय' नामक निबंधके निर्युक्तिकार भद्रबाहु और स्वामी समन्तभद्रको एक माननेके विचार संबंधी एक प्रधान अंशका उत्तर लिखनेके लिये 'क्या निर्युक्तिकार भद्रबाहु और स्वामी समन्तभद्र एक हैं, ? शीर्षक लेखकी[3] तैयारीमें लगा हुआ था, तब मुझे भद्रबाहुकी, जिनका श्वेताम्बर परम्परामें बहुत बड़ा स्थान है और जिनकी निर्युक्तियाँ सीधी आगमसूत्रों पर लिखी होनेके कारण आगमतुल्य मानी जाती हैं, निर्युक्तियोंके पन्ने उलटनेका अवसर मिला। निर्युक्तियोंमें मुझे कुछ ऐसी बातें मिली हैं जो श्वेताम्बर आगमोंके तो अनुकूल हैं। पर आचार्य उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रके अनुकूल नहीं हैं। मुझे उस समय ऐसा लगा कि जब तत्त्वार्थसूत्रको श्वेताम्बर आगमोंके आधारपर बना हुआ बतलाया जाता है और उसे श्वेताम्बर ग्रन्थ प्रसिद्ध किया जाता है तो ये विभिन्न बातें इसमें क्यों हैं ? जो कि दिगम्बर परम्पराके अनुकूल हैं। जब तत्त्वार्थसूत्रकार श्वेताम्बर परम्पराके हैं और उनका तत्त्वार्थ सचेल श्रुत (श्वेताम्बर आगम) के आधारपर बना है तब उन्होंने श्वेताम्बर श्रुत (आगम) का त्याग क्यों किया ? भद्रबाहुकी तरह पूर्व परम्परानुसारही प्रवृत्ति क्यों नहीं की ? ये बातें ऐसी हैं जो उपेक्षणीय नहीं हैं और जो हमें वास्तविक तथ्यको खोजनेके लिये इङ्गित करती हैं।

अतः आज मैं निर्युक्तिकार और तत्त्वार्थसूत्रकारके बीचमें पाये जाने वाले वैषम्यको विद्वान् पाठकोंके सामने प्रस्तुत करता हूँ जिनके आधारपर आ० उमास्वाति और उनका तत्त्वार्थसूत्र सचेल परम्पराके सिद्ध न होकर असंदिग्ध रूपसे अचेल दिगम्बर परम्परा के प्रसिद्ध होते हैं। यथा—

१ निर्युक्तिकार भद्रबाहुने उत्तराध्ययन निर्युक्तिकी ७७वीं गाथामें दर्शन परीषह बतलाई है और उनका यह बतलाना उत्तराध्ययनसूत्रों (पृ० ८२) में आई 'सम्मत्त परीसह' के अनुकूल है[4]। भद्रबाहुकी वह गाथा निम्न प्रकार है :—

'दंसणमोहे दंसणपरीसहो नियमसो भवे एक्के।'

अर्थ—दर्शनमोहनीय कर्मके उदय होनेपर नियमसे दर्शन परीषह होती है। लेकिन तत्त्वार्थसूत्रकार आ० उमास्वातिने 'दर्शनपरीषह' या 'सम्मत्तपरीसह' नहीं कही। उन्होंने 'अदर्शन परीषह' बतलाई है। जैसा कि उनके निम्न दो सूत्रोंसे प्रकट है—

१ आप इस सम्बन्धमें कोई लेख भी लिख रहे हैं।

२ यापनी. संघ दिगम्बर सम्प्रदायका ही एक संघ भेद है।

३ यह लेख अनेकान्त वर्ष ६ किरण १०-११ में प्रकट हो चुका है।

४ तत्त्वार्थसूत्रजैनागमसमन्वयके उल्लिखित सूत्रोंमें भी 'दंसणपरीसह' है। देखो, पृ० २०६, २०८

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

"क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाचनालाभरोग-तृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाज्ञानादर्शनानि ।'—तत्त्वार्थसू० ९—९ ।

'दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ ।'—त० सू० ९—१४ ।

अर्थ—क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नाग्न्य, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृण-स्पर्श, मल, सत्कारपुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और अदर्शन ।

दर्शन मोहनीय कर्मके उदयसे अदर्शन और अन्तरायकर्मके उदयसे अलाभ परीषह होती है ।

यहाँ स्पष्टतया 'अदर्शनपरीषह' का ग्रहण है । और तत्त्वार्थसूत्रके टीकाकारोंने भी अदर्शन परीषह ही मानी है, दर्शन परीषह नहीं ।

२ भद्रबाहु ने इसी उत्तराध्ययन निर्युक्तिकी गाथा ८२ में एक जीवके उत्कृष्ट और जघन्यपनेसे संभव परीषहोंका वर्णन करते हुए एक साथ कमसे कम एक और अधिकसे अधिक २० परीषहोंका सद्भाव स्वीकार किया है । जैसा कि उनकी निम्न गाथासे स्पष्ट है:—

बीसं उक्कोसपए वदंति जहन्नओ हवइ एगो ।
सीउसिण चरियं निसीहिया य जुगवं न वदंति ॥

अर्थ—उत्कृष्टपनेसे २० और जघन्यपनेसे १ परीषह होती है । एक तो स्पष्ट है और बीस इस तरह कि शीत और उष्ण तथा चर्या और निषद्या ये एक साथ नहीं हो सकतीं । शीत और उष्णमेंमे कोई एक और चर्या तथा निषद्यामेंसे कोई एक परीषह होगी । इस तरह दो परीषह कम करनेपर २२—२ = २० परीषह ही हो सकती हैं । इससे कम नहीं और न ज्यादा । उनका यह कथन श्वे० आगमानुसार है[1] ।

किन्तु तत्त्वार्थसूत्रकार इससे कुछ और ही कहते हैं । वे उत्कृष्टपनेसे १९ ही परीषह बतलाते हैं । जैसे—

'एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतिः ।'—तत्त्वार्थसू० ९—१७

अर्थ—एक जीवमें एक साथ एकको आदि लेकर १९ तक परीषह हो सकती हैं । यद्यपि तत्त्वार्थसूत्रकारने निर्युक्तिकारकी तरह स्पष्ट करके नहीं बतलाया कि वे १९ परीषह कौनसी संभव हैं और कौन कम हो जाती हैं ? पर १९ की संख्या तो सूत्रकारकी ही कण्ठोक्त है और उसका खुलासा तथा मेल उनके टीकाकारोंने बिठाकर उनके अभिप्रेतको स्पष्ट किया है और बतलाया है कि शीत और उष्णमेंसे कोई एक तथा चर्या, शय्या और निषद्यामेंसे एक ही परीषह संभव है । अतः शीत और उष्णमेंसे एक और चर्या, शय्या

१ 'सत्तविहबंधगस्स णं भंते ? कति परीसहा पण्णत्ता ? गोयमा ? बावीसं परीसहा पण्णत्ता, वीसं' पुण वेदेइ, जं समयं सीयपरीसहं वेदेति णो तं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ, जं समयं उसिण-परीसहं वेदेइ णो तं समयं सीयपरीसहं वेदेइ, जं समयं चरिया परिसहं वेदति णो तं समयं निसीहि-यापरीसहं वेदेति जं समयं निसीहियापरीसहं वेदेइ णो तं समयं चरियापरीसहं वेदेइ ।'

—तत्त्वार्थसूत्रजैनागमसमन्वय पृ० २०८

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

तथा निषद्यामेंसे दो इस प्रकार तीन परीषह कम कर देने पर २२ — ३ = १९ ही परीषह एक साथ होती हैं।

पाठक, देखेंगे कि तत्त्वार्थसूत्रकार और उनके टीकाकारोंका एक ही मन्तव्य है। यह ध्यान देने योग्य है कि भद्रबाहुने चर्या और निषद्याके साथ शय्याका विरोध उद्भावित नहीं किया। जब कि चर्या और निषद्याके पारस्परिक विरोधकी तरह शय्याका भी उन दोनोंके साथ स्पष्ट विरोध है। चर्या तथा निषद्याके समय शय्या परीषह नहीं हो सकती है। इससे स्पष्ट है कि निर्युक्तिकार चर्या या निषद्याके साथ शय्याका भी सहभाव मानते हैं और वे ऐसा मानकर ही उत्कृष्टपनेसे २० परीषहोंके होनेकी अपनी श्वेताम्बरीय श्रुत मान्यताको प्रकट करते हैं। जब कि तत्त्वार्थसूत्रकारकी मान्यता १९ की ही है।

३ निर्युक्तिकार भद्रबाहु तीर्थंकर कर्म के २० कारणोंको बतलाते हैं जो श्वेताम्बर आगमानुसार हैं। वे कारण नीचे दिये जाते हैं :—

अरिहंतसिद्धपवयणगुरुथेरबहुस्सुए तवस्सीसुं।
वच्छल्लया एएसि अभिक्ख नाणोवओगो य॥
दंसणविणए आवस्सए य सीलव्वए निरइआरो।
खणलवतवच्चियाए वेयावच्चे समाही य॥
अप्पुव्वनाणगहणे सुयभत्ती पवयणे पभावणया।
एएहि कारणेहिं तित्थयरत्तं लहइ जीवो॥

—आवश्यक निर्यु० गा० १७९, १८०, १८१

अर्थ—अर्हत्वत्सलता, सिद्धवत्सलता, प्रवचन-वत्सलता, गुरुवत्सलता, स्थविरवत्सलता, बहुश्रुतवत्सलता, तपस्विवत्सलता अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, दर्शननिरतिचारता, विनयनिरतिचारता, आवश्यक-निरतिचारता, शीलनिरतिचारता, व्रतनिरतिचारता, क्षण लवसमाधि, तपःसमाधि, त्याग-समाधि, वैयावृत्यसमाधि, अपूर्वज्ञानग्रहण, श्रुतभक्ति और प्रवचन प्रभावना, इन कारणोंसे जीव तीर्थंकरत्व—तीर्थंकरपनेको प्राप्त होताहै—अर्थात् तीर्थंकर कर्मका बन्ध करता है।

यहाँ निर्युक्तिकारने यद्यपि बीस कारणोंको एक एक करके गिना दिया हैं और वे कुल बीस हो जाते हैं किन्तु उनके परिमाणको स्पष्ट बतानेवाला संख्यावाची 'बीस' पद नहीं दिया। जब मैंने इसी निर्युक्तिकी अगली गाथाओंको और पढ़ा तो वहाँ स्पष्टतया बोध करानेवाला उन्हींके द्वारा प्रयुक्त 'बीस' पद भी मिल गया जहाँ बीसोंसे अथवा किसी एकसे भी तीर्थंकर कर्मका बन्ध होने का उल्लेख है। वह गाथा इस प्रकार है :—

णियमा मणुयगतीए इत्थी पुरिसे यरोब्व सुहलेसो।
आसेवियबहुवेहिं वीसाए अणणयर एहिं॥ —आवश्यक नि० गा० ७४१

अर्थ—मनुष्यगतिमें शुभलेश्यावाला पुरुष अथवा स्त्री नियमसे बीसकारणों या किसी एक का आसेवन करनेसे तीर्थंकरत्वको प्राप्त करता है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

भद्रबाहुके द्वारा निर्दिष्ट उपर्युक्त इन कारणों को जब मैंने श्वे० आगमसूत्रोंके साथ भी अनुकूलता जानने के लिये उन्हें देखा तो ज्ञातृधर्मकथांग अध्ययन ८ का ६४वाँ सूत्र शब्दशः एक है। इतना ही नहीं, वही क्रम, वही नाम और वही संख्या मुझे वहाँ उपलब्ध हुई। वह सूत्र पुनरुक्त होता हुआ भी यहाँ दिया जाता है :—

अरहंत-सिद्ध-पवयण-गुरु-थेर-बहुस्सुए तवस्सीसुं।
वच्छलया य तेसिं अभिक्खनाणोवओगे य ॥१॥
दंसण-विणए आवस्सए य सीलव्वए निरइयारं।
खणलव-तव-च्चियाए वेयावच्चे समाही य ॥२॥
अप्पुव्वनाण गहणे सुयभत्ती पवयणे पभावणया।
एएहिं कारणे हिं तित्थयरत्तं लहइ जीवो ॥३॥

—ज्ञातृधर्मकथांग अ० ८ सू० ६४।

अर्थ वही है जो पहले बताया है। इस तरह हम निर्युक्तिकारको यहाँ भी अपने श्वेताम्बरीय श्रुतके आधारपर चलता हुआ देखते हैं।

परन्तु तत्त्वार्थसूत्रकारको श्वेताम्बर श्रुत के आधारपर चलता हुआ नहीं पाते। वे तत्त्वार्थसूत्रके २४ वें सूत्रमें तीर्थंकरनामकर्मके १६ ही बन्धकारण निर्दिष्ट करते हैं और उनका यह निर्देश दिगम्बर श्रुत एवं परम्पराके सर्वथा अनुकूल है। तत्त्वार्थसूत्रका वह सूत्र निम्न प्रकार है :—

'दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतीचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थंकरत्वस्य।' —तत्त्वार्थसूत्र ६-२४।

अर्थ—दर्शनविशुद्धि, विनयसंपन्नता, शीलव्रतेष्वनतीचार, अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, संवेग, शक्त्यनुसारत्याग, शक्त्यनुसारतप, साधुसमाधि, वैयावृत्त्यकरण, अर्हद्भक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, आवश्यकापरिहाणि, मार्गप्रभावना और प्रवचनवत्सलत्व ये तीर्थंकरत्व—तीर्थंकरनामकर्मके १६ बन्धकारण हैं।

१६ की संख्याके साथ यही बन्धकारण दिगम्बर परम्पराके प्रसिद्ध षट्खण्डागममें इस प्रकार उपदिष्ट हुए हैं :—

'दंसणविसुज्झदाए विणयसंपण्णदाए सीलवदेसु णिरदिचारदाए आवासएसु अपरिहीणदाए खणलवपडिबुज्झणदाए लद्धिसंवेगसंपण्णदाए यथा थामे तथा तवे साहूणं पासुअपरिचागदाए साहूणं समाहिसंधारणाए साहूणं वेज्जावच्चजोगजुत्तदाए अरहंतभत्तीए बहुसुदभत्तीए पवयणभत्तीए पवयणवच्छलदाए पवयणप्पभावणाए अभिक्खणं णाणोवजोगजुत्ताए सोलसेहि कारणेहि जीवा तित्थयरणामगोदकम्मं बंधंति।'

बंधसामित्तविचय, सूत्र ४१

अर्थ—दर्शन विशुद्धता, विनयसंपन्नता, शील-व्रत निरतिचारिता, आवश्यकापरिहीनता, क्षणलवप्रतिबोधनता, लब्धिसंवेग सम्पन्नता, यथाशक्तितप, साधुप्रासुकपरित्यागता, साधु-समाधिसंधारणता, साधुवैयावृत्ययोगयुक्तता, अर्हद्भक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, प्रवचन-वत्सलता, प्रवचनप्रभावना, और अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता इस तरह इन सोलह कारणोंसे जीव तीर्थंकरकर्मको बांधते हैं।

षट्खण्डागमके इसी सूत्रके पूर्ववर्ती एक स्वतंत्र सूत्रके द्वारा तो तीर्थंकरनामकर्मके बन्धकारणों की १६ संख्या भी अलग से बतला दी गई है जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि १६ कारणोंकी मान्यता दिगम्बर परम्पराकी है। जब कि बीस २० कारणोंकी मान्यता श्वेताम्बरीय है। वह सूत्र निम्न प्रकार है :—

'तत्थ इमेहि सोलसेहि कारणेहि जीवा तित्थयरणामगोदकम्मं बंधंति।'

—बन्धसामित्तविचय, सूत्र ४०।

अर्थ—आगेके सूत्रमें निर्दिष्ट सोलह कारणोंसे जीव तीर्थंकरनामकर्मका बन्ध करते हैं।

पाठक, देखेंगे कि तीर्थंकरनामकर्मके नाम और उनकी १६ संख्या तत्त्वार्थसूत्रमें उसी प्रकार है, जिस प्रकार दिगम्बर परम्परा में हैं, इसमें न तो श्वेताम्बर श्रुत सम्मत प्रायः वैसे नाम हैं और न उनकी २० संख्या ही है। तब उसे सचेल पक्ष के श्रुत (श्वेताम्बर आगम सूत्रों) के आधार पर बना हुआ कैसे कहा जा सकता है? और उसके कर्त्ताको श्वेताम्बर परम्पराका कैसे माना जा सकता है? हमें आश्चर्य है कि माननीय पण्डित सुखलालजी जैसे विचारक तटस्थ विद्वान् पक्षमें कैसे वह गये और उन्होंने यह निर्णय कैसे दिया कि "उमास्वाति श्वेताम्बर परम्पराके थे और उनका सभाष्य तत्त्वार्थ सचेल पक्षके श्रुतके आधार पर ही बना है"......"वाचक उमास्वाति श्वेताम्बर परम्परामें हुए दिगम्बरमें नहीं"......। मालूम होता है कि यह सब उनका हमारे लिये उद्बोधन है। (क्रमशः)

तिलोय-पण्णत्ती की प्रशस्ति

तिलोय-पण्णत्ती के कर्त्ता एवं रचनाकाल आदि के सम्बन्ध में भास्कर की गत किरण में श्रीमान् पं० फूलचन्द्रजी शास्त्री, बनारस का एक विस्तृत लेख प्रकाशित हुआ है। उस लेख के प्रूफ संशोधन के समय मेरे मन में कुछ शंकाएँ उत्पन्न हुई थीं कि क्या सचमुच में ही तिलोय पण्णत्ती का रचनाकाल—संकलन-काल शक सं० ७३८ से शक सं० ९०० के मध्य में है। अपनी इस शंकाओं को दूर करने के लिये भवन की हस्तलिखित प्रति को एक बार आद्योपान्त देखा। यों तो भवन में तिलोय-पण्णत्ती की दो प्रतियाँ हैं, एक बहुत पुरानी अधूरी प्रति है और दूसरी अभी हाल सं० १९८२ में नकल कराई गई पूर्ण। अन्तरंग समीक्षा की कसौटी मैंने अपने लिये आये हुए गणित सम्बन्धी करण-सूत्रों को ही चुना था। इस परीक्षण से अवगत हुआ, कि तिलोय-पण्णत्ती के आये हुए सूत्रों में बहुत बड़ी विषमता

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

है। कुछ करण सूत्र तो भारतीय गणित परम्परा के अनुसार ईस्वी सन् से कई शताब्दी पूर्व के हैं और कुछ शक सं० की ७वीं और ८ वीं शताब्दी की गणित परम्परा के अनुसार विकसित, संशोधित एवं परिवर्तित रूप लिये हुए हैं। मैंने ऐसे २५ सूत्रों की भारतीय गणित के इतिहास के अनुसार सूची तैयार की एवं गणित के विकास क्रम के अनुसार उन सूत्रों के समय का अनुमान लगाया, तो कुछ सूत्र आर्यभट्ट के कालक्रियापाद एवं आर्यभट्टीय के अनुसार मालूम पड़े, पर कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें याजुष् और ऋक् ज्योतिष के सूत्रों के समान गणित का प्रारम्भिक रूप ही मानना पड़ेगा। दो-चार सूत्र ईस्वी सन् की प्रथम शताब्दी के सूर्यसिद्धान्तादि गणितग्रन्थों के समान भी हैं; कुछ सूत्र अत्यन्त विकसितावस्था में ब्रह्मगुप्त और भास्कर की गणित शैली का अनुसरण करते हैं। इन विभिन्नताओं को देखकर मैंने विचार किया था 'भास्कर' की आगामी किरण में "तिलोय-पण्णत्ती के करणसूत्रों की परीक्षा" शीर्षक लेख अपने पाठकों के समक्ष रक्खूंगा, पर कागज नियन्त्रण की असुविधा ने ऐसा न करने दिया। फिर भी इतना तो अवश्य कह देना चाहता हूं कि वर्तमान तिलोय-पण्णत्ती वास्तविक में एक संकलित ग्रन्थ है। क्योंकि कोई भी गणितज्ञ इतनी बड़ी विषमता—गणित सम्बन्धी सूक्ष्मता और स्थूलता, एक साथ नहीं लिख सकता। भवन की तिलोय-पण्णत्ती की प्रति में एक लम्बी प्रशस्ति जिनचन्द्र के शिष्य मेधावी पण्डित की दी गई है। इनका समय अनुमानतः विक्रम संवत् की १६ वीं शताब्दी मालूम पड़ता है। इस प्रशस्ति से इतिहास के विद्वानों को अनेक बातों की जानकारी होगी, इसलिये भास्कर में दी जा रही है। कई मित्रों का भी आग्रह था कि मैं इस प्रशस्ति को भास्कर में शीघ्र दे दूं; जिससे विद्वानों के समक्ष विचारार्थ सामग्री उपस्थित हो सके। तिलोयपण्णत्ती जैन गणित की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। जैसे वैदिक साहित्य में वेदाङ्ग ज्योतिष प्राचीनता की दृष्टि से महत्त्व पूर्ण माना जाता है, वैसे ही जैनागम ग्रन्थों में भी फुटकर रूप से अनेक गणित सम्बन्धी चर्चाएँ उपलब्ध हैं। यदि इन चर्चाओं को कालक्रमानुसार संकलित कर लिया जाय तो वेदाङ्ग ज्योतिष से भी महत्त्व पूर्ण जैनगणित की अनेक बातें प्रकाश में आ जायँ।

प्रशस्ति

वृषभो वः श्रियं कुर्याद्वृषभाङ्को वृषाग्रणी। ध्वस्ता रागादयो येन दोषाः सिंहेन वा मृगाः ॥१॥ चन्द्रप्रभो जिनो जीयाच्चन्द्राभोऽपि तनुश्रिया। निष्कलङ्कः कलानेको भ्रान्तिहीनस्तमोगतः ॥२॥ शान्तिः शान्तिकरो भूयात्षोडशस्तीर्थनायकः। चकार जगतः शान्तिं यो धर्मामृतवर्षणैः ॥३॥ श्रीवीरं च महावीरं वर्द्धमानं च सन्मतिम्। महतिं (महान्तं) प्रणमामीशं कलौ कल्पतरूपमम् ॥४॥ यदालम्ब्य जना यान्ति पारं संसारवारिधेः। अनन्तमहिमाढ्यं तज्जैनं जयति शासनम् ॥५॥ जयन्तु गौतमस्वामिप्रमुखाः गणनायकाः। सूरयश्च जिनेन्द्रान्ताः श्रीमन्तः

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

क्रमदेशकाः ॥६॥ वर्षे नवैकपंचैक १५१९ पूरणे विक्रमेनतः (गते)। ज्येष्ठमासे सिते पक्षे पंचम्यां भौमवासरे ॥७॥ अधोमध्योर्ध्वलोकस्य यस्यां प्रज्ञापनं मतम्। तस्यास्त्रैलोक्यप्रज्ञप्तेर्वंशं लेखयितुं ब्रुवे (लेखयितुं ब्रुवे) ॥८॥ श्रीजम्बूपपदे द्वीपे क्षेत्रे भरतसंज्ञके। कुरुजांगलदेशोऽस्ति यो देशः सुखसम्पदाम् ॥९॥ विद्यते तत्समीपस्था श्रीमती योगिनीपुरी। यां पाति पातिसाहि श्रीबहलोलाभिधो नृपः ॥१०॥ तस्याः प्रत्यग्दिशि ख्यातं श्रीहिसारपिरोजकम्। नगरं नगरंभादि-वल्लीराजिविराजितम् ॥११॥ तत्र राज्यं करोत्येष श्रीमान् कुतवस्थानकः। यश्चकार प्रजा स्वस्था दाता भोक्ता प्रतापवान् ॥१२॥ अथ श्रीमूलसंघेऽस्मिन्नंदिसंघेऽनघेऽजनि। बलात्कारगणस्तत्र [गच्छः] सारस्वतस्त्वभूत् ॥१३॥ तत्राजनि प्रभाचन्द्रः सूरिचन्द्रोजितांगजः। दर्शनज्ञानचारित्र-तपोवीर्यसमन्वितः ॥१४॥ श्रीमान् बभूव मार्त्तण्डस्तत्पट्टोदयभूधरे। पद्मनन्दी बुधानन्दी तमश्छेदी मुनिः प्रभुः ॥१५॥ तत्पट्टाम्बुधिसच्चन्द्रः शुभचन्द्रः सतां वरः। पंचाक्षवनदावाग्निः कषायक्ष्मा-धराशनिः ॥१६॥ तदीयपट्टाम्बरभानुमाली क्षमादिनानागुणरत्नशाली। भट्टारकः श्रीजिनचन्द्र-नामा सैद्धान्तिकानां भुवि योऽस्ति सीमा ॥१७॥ स्याद्वादामृतपानतृप्तमनसो यस्यातनोत्सर्वतः, कीर्त्तिर्भूमितले शशाङ्कधवला सुज्ञानदानात्सतः। चार्वाकादिमतप्रवादितिमिरोष्णांशोर्मुनीन्द्रप्रभोः, सूरिश्रीजिनचन्द्रकस्य जयतात्संघोहि तस्यानघः ॥१८॥ बभूव मण्डलाचार्यः सूरेः श्रीपद्म-नन्दिनः। शिष्यः सकलकीर्त्याख्यो लसत्कीर्त्तिर्महातपः ॥१९॥ आचार्यः जयकीर्त्याह्वस्तच्छिष्यो मुनिकुंजरः। उत्तमक्षांतिमुख्यानि धर्माङ्गानि दधाति यः ॥२०॥ [स] दक्षिणादुदग्देशे समागत्य मुनिप्रभुः। जैनमुद्योतयामास शासनं धर्मदेशनात् ॥२१॥ पुर्व्यां सिंहतरंगिण्यां यस्मिञ्जाते मुनीश्वरे। भव्यैः सम्यक्त्वमग्राहि कैश्चिच्चाणुमहाव्रतम् ॥२२॥ हरिभूषणसंज्ञोऽस्ति तस्य शिष्योऽस्तमन्मथः। एकान्तराद्यजस्रं यः करोत्युग्रं तपो मुनिः ॥२३॥ परः सहस्रकीर्त्याख्यस्तच्छिष्यो भवभीरुकः। दीक्षां जग्राह यस्त्यक्त्वा भ्रातृपुत्रपरिग्रहम् ॥२४॥ क्षांतिका ? क्षान्तिशील्या (ला) दि गुणरत्नखनिः सती। गन्धर्वश्रीरितिख्याता शीलालंकारविग्रहा ॥२५॥ अणुव्रत्यस्ति बोधाख्यो जिनादिष्टार्थसद्रुचिः। शंकाकांक्षादिनिर्मुक्तः सम्यक्त्वादिगुणान्वितः ॥२६॥ द्वितीयो ब्रह्ममेधाख्यो भवकायविरक्तधीः। विनयादिगुणैर्युक्तः शास्त्राध्ययनतत्परः ॥२७॥ अग्रोतवशंजः साधुर्लवदेवाभि-धानकः। तन्वङ्गोद्धरणसंज्ञः ? तत्पत्नीभीषुहीश्रुतिः ॥२८॥ तयोः पुत्रोऽस्ति मेधाविनामा पण्डित-कुंजरः। आप्तागमविचारज्ञो जिनपादाब्जषट्पदः ॥२९॥ एषामाम्नायसम्भूते वंशे खण्डेलसंज्ञके। गोत्रे गोधाभिधाने [यो] नाना गोधाकरोऽजनि ॥३०॥ साधुसावन्तकस्तत्र सोवतंसोपमे कुले। यस्योपकारजाकीर्त्या सर्वं श्वेतीकृतं जगत् ॥३१॥ तत्पुत्रौ परमोदारौ दानमानादिसद्गुणैः। नागनाशाविव श्लिष्टौ मिथः स्नेहवशौ भृशम् ॥३२॥ साधुः कुमारपालाख्यस्तदाद्योऽभूत्सतां मतः। देवपूजादिषट्कर्मनिरतो विरतोऽशुभात् ॥३३॥ तत्पत्नी लाछिसंज्ञासील्लक्ष्मीरिव हरेः प्रिया। यया जिग्ये स्वशीलेन सीतारूपेण सा इति ॥३४॥ तत्पुत्रत्रितयं जातं विनयादिगुणा-श्रितम्। येन संभूषितं गोत्रं तपो रत्नत्रयेण वा ॥३५॥ तत्राद्यः पद्मसिंहाह्वः संघेशो जिनपाद-

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

भित्। हिंसा [त्याग] सत्यादिपंचाणुव्रतभूषितः ॥३६॥ भाग्यं भालस्थले यस्य शिरस्युच्चैर्गुरोन्नतिः। शास्त्रस्य श्रवणं श्रुत्योर्नेत्रयोः सम्यग्दर्शनम्[1] ॥३७॥ वचने प्रियवादित्वं कण्ठेऽर्हद्गुणकीर्त्तनम्। बुद्धौ परोपकारस्तु हृदि पंचगुरुस्मृतिः ॥३८॥ करे दानं सुपात्रस्य लक्ष्मीर्वक्षःस्थलेऽवसत्। पादयोस्तीर्थयात्रादिः सभा भूपतिसन्निधौ ॥३९॥ त्रिकलम्॥ अन्यो नेमाभिधानोऽभून्नियमादिगुणालयः। संघधूर्द्धरणे नेमिर्निजवंशनभो रविम् ॥४०॥ जातः पुत्रस्सारंगः सारंगस्तृतीयः[2] सुतः। चतुर्विधमहादानविधौ कल्पतरूपमः ॥४१॥ साधुसावन्तसंज्ञस्य यो द्वितीयस्तनूरुहः। सोऽयं भाभण[3] ? नामासीच्छीलालंकृतविग्रहः ॥४२॥ तदंगजास्त्रयः ख्याता मुनिराजसदस्यय (थ) ॥४३॥ तेष्वाद्यः साधुसालाख्यः साल्हादो जिनपूजने। द्यूतादिव्यसनत्यागाच्छ्रावकः व्रतभावकः ॥४४॥ सहजाको द्वितीयोऽभूत्सहजेन प्रियंवदः। गाम्भीर्येण पयोराशिं योऽजिगाय धिया गुरुम् ॥४५॥ तृतीयः सावलाभिख्यो जातो जगति कीर्त्तिमान्। यो दानं याचकेभ्योऽदात्प्रहृष्टो दृष्टिमात्रतः ॥४६॥ श्रीमत्कुमारपालस्य यो जातः प्रथमोंगजः। पद्मसिंहोऽभिधानेन पद्माभास्यो जनप्रियः ॥४७॥ तद्भार्या कुलसत्कार्या साध्वी मेहिणिसंज्ञया। गौरीवेशस्य चन्द्रस्य रोहिणीव मनःप्रिया ॥४८॥ या सती नारिवृन्देषु-शीलनिर्मलवारिभिः। गीतादिकलहंसैश्च गंगेवसरिताङ्गणे ॥४९॥ तयोस्तनूरुहाः सन्ति त्रयः कन्दर्पमूर्त्तयः। शंखकुन्देन्दुहाराभकीर्त्तयः पटुरीलयः ॥५०॥ तेषामाद्योऽस्ति संघेशो घेरूनामा गुणाकरः। सतामग्रेसरः स्फारः सर्वलोकमनोहरः ॥५१॥ मानितः सुर (ल) तानेन बहलोलाभिधेन यः। पुर्यां सिंहतरंगिण्यां भाण्डागारपदे धृतः ॥५२॥ ये वन्दिगृहमानीता म्लेच्छैश्चास्हादि ? सज्जनाः। तान्विमोच्य सद्द्रव्येण न्यायेनोपार्जितेन वै ॥५३॥ तेभ्यो दत्त्वा च सद्भुक्तिं वस्त्राणि परिधाप्य च। व्ययं य (वि) तीर्य मार्गाय विस [स] र्ज गृहं प्रति ॥५४॥युगलम्॥ भाण्डागारपदे यस्मिन् श्रावकाः सुखमास्थिताः। दानपूजाविधिव्यक्त भक्त्या संविग्नमानसाः ॥५५॥ दुर्मनगरकोटाख्ये ? येन सूत्तुंगतोरणम्। कलशध्वजरोचिष्णु कारितं जिनमन्दिरम् ॥५६॥ सूही नाम्न्यस्ति तज्जाया लब्धच्छाया व्याल-छाया[4] कलालया। दायिनी पात्रदानानां भर्तुर्भक्ति विधायिनी ॥५७॥ मिष्टं यद्गिरमाकर्ण्य कोकिला वा ह्रिया पुरात्। निर्गत्य स्वं च निन्दन्ती वनवासमशिश्रियत् ॥५८॥ यदास्येनजितं चन्द्रं मन्ये सम्पूर्णमण्डलम्। नो चेत्कथं ततोऽन्हः सः क्षीयते प्रतिवासरम् ॥५९॥ मन्थरां यद्गतिं वीक्ष्य वराटाख्यो (वराटा) शोकसंगता। तत्राप्यैकातपश्चक्रे-दुर्गमे जलसंगमे ॥६०॥ तन्नंदनौ समुत्पन्नौ रूपयौवनशालिनौ। कुलधूर्द्धरणौ दक्षौ पुरुषौ वृषभाविव ॥६१॥ आद्यः साधारणः संज्ञा साधारो गुणभूषणः। यः सर्वज्ञपदाम्भोजे जातः षट्चरणोपमः ॥६२॥ यच्छासनमनुल्लंघ्यं सर्वैर्नागरिकैर्जनैः। सीमेव पक्षिराजस्य हंसपुंस्कोकिलादिभिः ॥६३॥ लब्ध्वा नामालसद्धामा द्वितीयो विनयान्वितः। प्रसादाच्छान्तिनाथस्य चिरं जीयात्स भूतले ॥६४॥ संघेशपद्मसिंहस्य द्वितीयोऽस्ति शरीरजः। सीहाश्रुतिर्धृतिच्चान्तिशान्ति-

१ मात्राधिक्यम् २ मात्रादोषः ३ इस स्थान की लिपि सुवाच्य नहीं है।
४इस स्थान पर 'लब्धच्छाया कलालया' पाठ सर्व श्रेष्ठ मालूम पड़ता है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कान्ति गुणालयः ॥६५॥ पराक्रमेण सिंहाभः कान्त्या चन्द्रो धिया गुरुः । गाम्भीर्येण पयोराशि-र्मेरुर्गरिमया स्वया ॥६६॥ यो नित्यं मतविच्छेदी कुरुते देवपूजनम् । जलाद्यैरष्टभिर्द्रव्यैर्विधि-वत्स्नानपूर्वकम् ॥६७॥ महतीं स्वसमां लघ्वीं परनारीं निरीक्ष्य यः । मन्यते जननी भगिनी पुत्री तुल्याः स्वचेतसि ॥६८॥ गुणश्रीरिति तं भेजे गंगेवलवणार्णवम् । उच्चैःकुलाद्रिजाशुद्धद्विज-राजिविराजिता ॥६९॥ किन्नर्या इव सत्कन्यागीतानि जिनमन्दिरे । जन्हुरत्नोभ्यश्चितानां मुनि-नामपिमानसम् ? ॥७०॥ वस्त्रैः पीतांसुहारैश्च श्वेतां कृष्णां शिरोरुहैः । हरिताङ्कुरताम्बूलै रक्तां कुंकुम मण्डनैः ॥७१॥ यकां सौभाग्ययुक्तांगीं विलोक्य सुजना जनाः । नित्यमानन्दयामासुरिति मंगलदर्शनम्॥७२॥ तृतीयो नन्दनो जातः पद्मसिंहस्य पापहृत् । संघे सचाहडाभिरव्यो दांतात्मा च प्रसन्नधीः ॥७३॥ कुदेवगुरुतत्त्वेषु सद्देवगुरुतत्त्वधीः । येनात्मा जीत्ति मिथ्यात्वं भवदुःखवि वर्द्धनम ॥७४॥ देवेऽष्टादशदोषघ्नि गुरौ ग्रन्थविवर्जिते । तत्त्वे सर्वज्ञनिर्दिष्टे जीवादौ रुचि-लक्षणम् ॥७५॥ सम्यक्त्वमिति यच्चित्ते स्थिरीभूतं सुनिर्मलम् । प्राणिनां भ्रमतांशश्च दुर्लभं यद्भवार्णवे ॥७६॥ ॥युगलम्॥ अष्टौ मूलगुणान् पाति मधुमांन्सादिवर्जनात् । अतिचारगतान्शाका-द्यनन्तकायमुज्झति[1] ॥७७॥ प्रथमप्रतिमाहिंसायाश्च मृषावादात् परस्वग्रहणात्तथा[2] । परस्त्रीरमणा-त्प्रायः संगाद्विरमणं मतम ॥७८॥ इति पंचविधं यश्चाणुव्रतं मलवर्जितम् । धत्ते त्रिकरणैः शुद्धः स्वर्लोकसुखकारणम् ॥७९॥ ॥युगलम्॥ यश्चाणुव्रतरक्षार्थं गुणव्रतत्रयं स्थिरम् । शिक्षाव्रतचतुष्कं च पायाद्दोषोज्झितं हितम ॥८०॥ त्रिकालं क्रियते येन सामायिकमनुत्तमम् । सप्तशुद्धिभिरालीढं द्वात्रिंशद्दोषवर्जितम् ॥८१॥ चतुः पर्वाणि कुर्याद्यो मासं मासं प्रतीच्छया । क्षमणं करणग्रामनिग्रह-प्राणिरक्षणम् ॥८२॥ कालाग्नियंत्रपक्वं यत् फलशालिकणादिकम् । जलं च प्रासुकं यश्च भुङ्क्ते पिबति नित्यशः ॥८३॥ एकपत्नीव्रतं येन गृहीतं गुरुसन्निधौ । तत्रापि न दिवाभुक्ती रात्रावेव निषेवणम् ॥८४॥ इति गार्हस्थयोग्यानि षट्स्थानानि दधाति यः । स्थानानां शेषपंचानां भावानां भवत्फलम ॥८५॥ देवानर्चति नित्यं यो जलाद्यैर्वस्तुभिः शुभः । गुरून्नमति भक्त्या यो रत्न-त्रयपवित्रितान् ॥८६॥ शृणोत्यध्येति[3] सच्छास्त्रं द्रव्यशुद्धयादिपूर्वकम् । इन्द्रियाणि निगृह्णाति जन्तून् रक्षति यत्नसान् ॥८७॥ स्वशक्त्या तपति प्रायः प्रायश्चित्तादि यस्तपः । दानं चतुर्विधं भक्त्या सत्पात्रेभ्यः प्रयच्छति ॥८८॥ स्थाने श्रीभूभरणनाम्नि येनाकारि जिनालयः । निजवित्तेन यस्तम्भ कलशध्वजराजितः ॥८९॥ नित्यं जिनालये श्रद्धा त्रिकालं देवतार्चनम् । कुर्वन्ती सोत्सवं भक्त्या विधिवत्स्नानपूर्वकम् ॥९०॥ चैत्रे भाद्रपदे मासे माघेऽष्टाह्निकपर्वणि । अभि-षेकाश्च जायन्ते यत्र मण्डलपूर्वकम् ॥९१॥ गायन्ति यत्र सन्नार्यो माङ्गल्यानि जिनेशिनाम् । वादयन्ति च वाद्यानि नृत्यन्ति पुरुषोत्तमाः ॥९२॥ सच्छायं पात्रसंयुक्तं सुमनोभिः समंचितम् । फलदायकमुच्चैस्थं नानाश्रव (म) णसेवितम् ॥९३॥ यमुद्दिश्यसमागत्य चतुर्दिग्भ्यो मुनीश्वराः । विश्राम्यन्ति च वन्दित्वा यदाद्रुममिवाध्वगाः ॥९४॥ ॥युगलम्॥ पूर्वजन्मजपापौघ-राशिं संदग्धुमिच्छुकैः । भव्यैरत्र्दिसकर्पूरकृष्णागुरुजधूपजम् ॥९५॥ मण्डलीभूतमालोक्य धूमं

1 मात्रादोषः । 2 मात्राधिक्यम । 3 आत्मनेपदमपेक्ष्यते ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

खे मेघशंकिनः । अकाण्डे ताण्डवाटोपं यत्र तन्वन्ति बर्हिणः ॥९६॥ ॥युगलम्॥ येन चारु-भटाख्येन पंडितानां धृतेन वै । अन्वर्थेन हि पापारिनिर्जितोऽत्रशुभासिना ॥९७॥ विलोक्य संसारशरीरभोग्यं विनश्वरं दर्भपुरस्थिताम्बुवत् । परोपकारे जगतीह सारे धृता मतिर्येन सदा विशुद्धा ॥९८॥ यत्कीर्त्या हरहारचन्द्रकिरणप्रोत्तुंगदुग्धार्णव, रंगद्रंगतरंगसन्निभमयाश्वेती-कृते विष्टपे । श्रीवैरिस्त्रिजनैर्विलोक्यवदनंश्चादर्शपट्टे सिते, श्वभ्रं वा विकृतिं विबुद्धय रुदे पत्युर्वियोगाभयात् ॥९९॥ पद्मावती जनि तस्य पद्माख्या पद्मसन्निभा । पद्मावती च नागाधि-पतेः संभोगदायिनी ॥१००॥ लावण्यवाहिनीकाया यस्यारूपं विलोक्यते । युवानः स्मरवाणौघै-विध्यन्ते शतजर्जरम् ॥१०१॥ सीतामन्दोदरीगंगाद्रौपदीचन्दनायया । जिग्ये शीलेन सत्येन कलौ स्वःसौख्यदायिना ॥१०२॥ प्रातःपवित्रभूताङ्गो समर्च्यार्हन्तमीश्वरम् । वन्दित्वा सुगुरूञ्छा-स्त्रं श्रुत्वागत्य स्वमन्दिरम् ॥१०३॥ भोजनावसरे साध्वी या श्रद्धादिगुणान्विताः । भुक्तिं वितीर्य-पात्रेभ्यस्ततो भोजयते पतिम् ॥१०४॥ ॥युग्मम्॥ एषां मध्ये स्ववित्तेन न्यायेनोपार्जितेन वै । संघेशचाहडाख्येन विनयादिगुणाश्रिता ॥१०५॥ विज्ञापयित्वा मेधाविनामानं पडितं वरम् । सिद्धांतरसतृप्तान्तःकरणं शरणं धियाम् ॥१०६॥ लेखयित्वा हिसाराख्य नगरान्नगराञ्जिनात् ?। पुर्य्यां सिंहतरंगिण्यामानाय्यस्वः समश्रियाम् ॥१०७॥ प्रावर्त्येतत्सिद्धान्तं हि भव्यानां पठनाय च । केवलज्ञानसंभूत्यैः स्वाज्ञानवृत्तिहानये ॥१०८॥ ॥चतुष्कलम्॥ पश्चान्मेधाविसंज्ञाय पंडिताय सदात्मने । प्रदत्तं शास्त्रमेतद्धि यत्परंपरयागतम् ॥१०९॥ योऽष्टाविंशति[मूल]सद्गुणयुतो धत्ते गुणानुत्तरान्, खण्डेल्लान्वयमण्डनेन्दुवदनश्रीपद्मसिंहांगजः । सीहाचाहडस्तत्सहोदरलसद्यो-रुकपुत्रान्वितः, सोऽयं श्री [ज] यकीर्त्तिरत्रभवते दद्याच्छ्रियां मङ्गलम् ॥११०॥ "आशीर्वादः" तदा तैर्जिनबिम्बानाममिषेकपुरस्सरा । कारितार्चा महाभक्त्या यथा युक्तिवसोत्सवम् ॥१११॥ भृंगारकलशादीनि जिनवासेसु पंचसु । क्षिप्तानि [किञ्च] पंचैव चैत्योपकरणानि च ॥११२॥ चतुर्विधाय संघाय सदाहारश्चतुर्विधः । प्रादाय्यौषधदानं च वस्त्रोपकरणानि च ॥११३॥ मित्रया-चकदीनेभ्यः प्रीतितुष्टिकृपादि च । दानं प्रदत्तमित्यादि धनव्ययोव्यधायि (पि) तैः ॥११४॥ इत्थं सप्तक्षेत्र्यां वपते यो दानमात्मनो भक्त्या । लभते तदनन्तगुणं परत्र सोऽत्रापि पूज्यः स्यात्॥११५॥ यो दत्ते ज्ञानदानं भवति हि स नरो निर्जराणां प्रपूज्यो, भुक्त्वा देवाङ्गनाभिर्विषयसुखमनुप्राप्य मानुष्यजन्म भुक्त्वा । राज्यस्य सौख्यं भवतनुखसुखन्निस्पृहीकृत्यचित्तम्, लात्वा दीक्षां च बुध्वा श्रुतमपि सकलं ज्ञानमन्त्यं लभेत ॥११६॥ ज्ञानदानाद्भवेद्ज्ञानी सुखीस्याद्भोजनादिह । निर्भयोऽभयतोजीवो नीरुगौषधदानतः ॥११७॥ धर्मतः सकलमंगलावली धर्मतो भवति मुण्ड-केवली ? । धर्मतो जिनसुचक्रभृद्बलीनाथतद्रिपुमुखोनरोवली ॥११८॥ ज्ञात्वेति कुर्वन्ति तु जनाः सुधर्मं सदैहिकामुष्मिकसौख्यकामाः । देवार्चनादानतपोव्रताद्यैर्द्धान्यं न लभ्यं कृषिमन्तरेण ॥११९॥ शास्त्रं शस्त्रं पापवैरिक्षयेद्यः शास्त्रं नेत्रं त्वन्तरार्थप्रदृष्टौ । शास्त्रं पात्रं सर्वचंचद्गुणानां शास्त्रं तस्माद्यत्नतो रक्षणीयम् ॥१२०॥ श्रुत्वा शास्त्रं पापशत्रुं हिनस्ति श्रुत्वा शास्त्रं पुण्यमित्रं धिनोति। श्रुत्वा शास्त्रं सद्विवेकं दधाति तस्माद्भव्यो यत्नतस्तद्धि पाति ॥१२१॥ यावत्ति-ष्ठति भूतले सुरनदी रत्नाकरो भूधरः । कैलाशः किल चक्रिकारितजगद्वंद्यज्ञचैत्यालयः ॥ यावद्व्योम्नि शशांकवासरमणिप्रस्फेटयंस्तौत्तमस्तावत्तिष्ठतु शास्त्रमेतदमलं संपद्यमानं बुधैः ॥१२२॥ सूरिश्रीजिनचन्द्राङ्घ्रिस्मरणाधीनचेतसा । प्रशस्तिर्विहितावासौमीहाख्येन सुधीमता ॥१२३॥ यद्यत्रक्वाप्यवद्यं स्यादर्थे पाठे मयाहृतम् । तदाशोध्य बुधैर्वाच्यमनन्तः शब्दवारिधिः १२४॥

—नेमिचन्द्र जैन शास्त्री, साहित्यरत्न, आरा ।

इति सूरिश्रीजिनचन्द्रान्तेवासिना पंडितमेधाविना विरचिता प्रशस्ता प्रशस्तिः समाप्ता ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कुछ महत्त्वपूर्ण अप्रकाशित जैन ग्रंथ और उनका संक्षिप्त परिचय

[ले०—श्रीयुत पं० के० भुजबली शास्त्री, विद्याभूषण, मूड़बिद्री]

'जैन ज्ञानपीठ' कर्णाटक-शाखा मूड़बिद्री की ओर से कर्णाटक के ग्रंथालयों में वर्तमान कुल हस्तलिखित ग्रंथों की एक अपूर्व सविवरण ग्रंथसूची जो तैयार की जा रही है उसमें अभी तक निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण अप्रकाशित संस्कृत-प्राकृत ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं। इस समय 'भास्कर' के विज्ञ पाठकों के समक्ष इन ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय ही उपस्थित किया जा रहा है। मूड़बिद्री के ग्रंथ-भाण्डारों में इन संस्कृत-प्राकृत ग्रन्थों के अतिरिक्त कई उल्लेखनीय अप्रकाशित कन्नड ग्रंथ भी प्राप्त हुए हैं। ये संस्कृत-प्राकृत ग्रंथ उत्तर भारत के विद्वानों के समक्ष भी आ जायँ, इस खयाल से इन सब ग्रन्थों की नागरी लिपि में प्रतिलिपि का प्रबन्ध भी किया गया है। आशा है कि हमारे सहयोगी विद्वान् इन अपूर्व ग्रन्थों से लाभ उठाते हुए इनके प्रचार में 'ज्ञानपीठ' को अवश्य सहयोग प्रदान करेंगे। ग्रन्थ इस प्रकार हैं :—

१ स्याद्वादसिद्धि—वादीभसिंहसूरि; पत्र सं०—१४; पंक्ति प्रतिपत्र—९; अक्षर प्रतिपंक्ति—९०; लिपि—कन्नड; भाषा—संस्कृत; विषय—न्याय; लेखनकाल—×; अपूर्ण तथा सामान्य शुद्ध; दशा—जीर्ण।

२ ध्यानस्तव—भास्करनन्दी[1]; पत्र सं—२; पंक्ति प्रतिपत्र—९; अक्षर प्रतिपंक्ति—९३; लिपि—कन्नड; भाषा—संस्कृत; विषय—अध्यात्म; लेखनकाल—×; पूर्ण तथा सामान्य शुद्ध; दशा—उत्तम।

३ परमागमसार—श्रुतमुनि; पत्र सं—६; पंक्ति प्रतिपत्र—९; अक्षर प्रतिपंक्ति—९०; लिपि—कन्नड; भाषा—प्राकृत; विषय—सिद्धान्त; लेखनकाल—×; पूर्ण तथा शुद्ध; दशा—उत्तम।

४ नवपदार्थनिर्णय[2]—वादीभसिंहसूरि; पत्र सं—१६; पंक्ति प्रतिपत्र—९; अक्षर प्रतिपंक्ति—९६; लिपि-कन्नड; भाषा—संकृत; विषय—सिद्धान्त; लेखनकाल—×; पूर्ण तथा सामान्य शुद्ध; दशा—उत्तम।

५ परीक्षामुखवृत्ति—श्रीशुभचन्द्रदेव; पत्र सं—९४; पंक्ति प्रतिपत्र—७; अक्षर प्रतिपंक्ति—९८; लिपि—कन्नड; भाषा—संस्कृत; विषय-न्याय; लेखनकाल—×; अपूर्ण तथा सामान्य शुद्ध; दशा—उत्तम।

६ गणितसार—श्रीधराचार्य; पत्र सं—४५; पंक्ति प्रतिपत्र—६; अक्षर प्रतिपंक्ति—८५; लिपि—कन्नड; भाषा—संस्कृत; विषय—गणितशास्त्र; लेखनकाल—×; पूर्ण तथा सामान्य शुद्ध; दशा—जीर्ण।

१ यह तत्त्वार्थवृत्ति के रचयिता हैं।

२ प्रायः इसकी एक प्रति 'पन्नालाल-सरस्वती-भवन' बम्बई में भी मौजूद है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

७ पुष्पांजलिमहाकाव्य—अयकीर्ति; पत्र सं—९; पंक्ति प्रतिपत्र—८; अक्षर प्रतिपंक्ति—९०; लिपि--कन्नड; भाषा--संस्कृत; विषय--काव्य; लेखनकाल— × ; अपूर्ण तथा सामान्य शुद्ध ; दशा--जीर्ण ।

८ विषमपदव्याख्यान¹—·······पत्र सं—१५; पंक्ति प्रतिपत्र ९; अक्षर प्रतिपंक्ति—१२५; लिपि--कन्नड; भाषा--संस्कृत; विषय--अध्यात्म; लेखनकाल— × ; पूर्ण तथा सामान्य शुद्ध; दशा--उत्तम ।

९ आराधनासार—मुनि रविचन्द्र; पत्र सं—८; पंक्ति प्रतिपत्र—९; अक्षर प्रलिपंक्ति ८८; लिपि--कन्नड; भाषा--संस्कृत; विषय--धर्म; लेखन—×; पूर्ण तथा सामान्य शुद्ध; दशा--उत्तम ।

१० कर्मप्रकृति—अभयचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती; पत्र सं--७६; पंक्ति प्रतिपत्र—८; अक्षर प्रतिपंक्ति—११०; लिपि—कन्नड; भाषा--संस्कृत; विषय—सिद्धान्त; लेखनकाल—×; पूर्ण तथा सामान्य शुद्ध; दशा—उत्तम ।

संक्षिप्त परिचय

आराधनासार—मुनि रविचन्द्र; पत्र सं—८; पंक्ति प्रतिपत्र--८; अक्षर प्रतिपंक्ति ८८; विषय--धर्म; लिपि--कन्नड; भाषा--संस्कृत; लेखनकाल---×; पूर्ण तथा शुद्ध; दशा--उत्तम ।

इसके प्रारम्भ में आराधना, आराधक, आराधनोपाय तथा आराधनाफल इन चारों को आराधना के चार चरण बतलाते हुए गुण-गुणी के भेद से आराध्य को दो प्रकार का बतलाया है। साथ ही साथ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र एवं सम्यक्तप ये चारों आराध्य के चार गुण कहे गये हैं। आगे सम्यग्दर्शन के भेद-प्रभेदों को गिनाकर संक्षेप में उनके स्वरूप, स्वामी, काल एवं प्रयोजन आदि विस्तार से वर्णित हैं। इसके बाद दर्शन तथा ज्ञान के भेद-प्रभेदों को गिनाते हुए प्रत्येक के स्वरूप, स्वामी आदि कहे गये हैं।

इस ज्ञानाराधना के बाद क्रम प्राप्त सामायिक आदि सम्यक्चारित्र के भेद-प्रभेद, स्वरूप, काल तथा स्वामी साथ-साथ बतलाये गये हैं। इस प्रकरण में व्रत, समिति, गुप्ति, शील एवं संयम आदि भेद 'छेदोपस्थापनाचारित्र' के ही अन्तर्गत कहे गये हैं। अनन्तर सम्यक्तप के भेद-प्रभेदों का वर्णन करते हुए ध्यान के भेद तथा स्वामी आदि का स्वरूप विस्तार से कहा गया है। इस प्रकरण में बारह अनुप्रेक्षाएं 'संस्थानविचय' धर्मध्यान में ही परिगणित कर दी गई हैं। हां, यहां पर अनुप्रेक्षाओं का स्वरूप विस्तार से मिलता है। इसके बाद आराधक के भेद विस्तार से कह कर सलक्षण पंच परमेष्ठियों को ही गुणी बतलाकर दर्शन, ज्ञान तथा चारित्र आदि के आराधक कौन-कौन हो सकते हैं, यह विस्तार से वर्णित है।

पश्चात् शंकादि दोषों को त्यागकर निश्शंकितादि गुणों को प्राप्त करना ही दर्शनाराधनोपाय कह कर आगे क्रमशः ज्ञानादि आराधनोपाय भी बतलाये गये हैं। अन्त में चारों प्रकार

१ यह आचार्य गुणभद्र कृत 'आत्मानुशासन' की टीका है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

की आराधनाओं का फल बतलाते हुए प्रत्येक को मुख्य तथा अमुख्य के भेद से दो प्रकार का कहा है। जैसे---सम्यग्दर्शन का मुख्य फल क्षायिक सम्यक्त्व को पाना एवं अमुख्य फल एकेन्द्रिय तथा नरकादि में उत्पन्न न होना बतलाया है।

इसके रचयिता वर्तमान मैसूर राज्यान्तर्गत पुनसोगे निवासी मुनि रविचन्द्र हैं। ग्रन्थ आर्या वृत्त में सरल संस्कृत में रचा गया है। यह अप्रकाशित नवीन ग्रन्थ प्रकाशनीय है।

कर्मप्रकृति—अभयचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्ती; पत्र सं---७३; पंक्ति प्रतिपत्र--८; अक्षर प्रतिपंक्ति--११०; विषय--सिद्धान्त; भाषा---संस्कृत; लिपि---कन्नड; पूर्ण तथा शुद्ध; दशा--सामान्य।

इसके प्रारम्भ में ज्ञानावरणादि मूल प्रकृतियों के साथ-साथ उत्तर प्रकृतियों का भी वर्णन दिया गया है। इस वर्णन में 'साता' के स्थान पर 'सात', 'स्वाति' के स्थान पर 'स्फाति' उपलब्ध है। यहां पर स्फाति का अर्थ अभयचन्द्रजी ने वल्मीक बतलाया है। रस नामकर्म के प्रकरण में आचार्यजी लवण को छठा रस न मान कर उसे मधुर में शामिल करते हैं। प्रकृतियों के वर्णन के बाद ग्रन्थ-कर्त्ता स्थित्यादि बन्धों का वर्णन करते हैं। कर्मों की स्थिति के प्रकरण में 'कोटाकोटि' के स्थान पर 'कोटिकोटि' ही मिलता है। भावकर्म के प्रकरण में केवल भावकर्मों की संख्या नोकर्मों के प्रकरण में उनका स्वरूप ही दिया गया है। बाद संसारी तथा मुक्त जीवों का स्वरूप सविशद बतलाकर अधः-प्रवृत्यादि करणों का स्वरूप अंक-संदृष्टि-द्वारा विस्तार से कहा गया हैं। इस प्रकरण में शेष गुणस्थानों का स्वरूप भी बतला दिया गया है। मेरे खयाल से यह ग्रन्थ अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। विषय एवं साहित्य दोनों दृष्टियों से ग्रन्थ प्रकाशनीय है। इसके रचयिता आचार्य अभयचन्द्र 'गोम्मटसार' के टीकाकार ही मालूम होते हैं। ग्रन्थ गद्य रूप में सरल संस्कृत में लिखा गया है। अभयचन्द्रजी ने इस गहन विषय को सुलभ भाषा में समझाने का पर्याप्त प्रयत्न किया है। इस कार्य में वे सफल भी हुए हैं।

(क्रमशः)

स्वप्न और उसका फल

[ले०—श्रीयुत साहित्यरत्न, न्याय-ज्योतिषतीर्थ पं० नेमिचन्द्र जैन शास्त्री, आरा]

(गतांक से आगे)

वमन—स्वप्न में वमन और दस्त होना देखने से रोगी की मृत्यु; मल-मूत्र और सोना-चांदी का वमन करना देखने से निकट मृत्यु; रुधिर वमन करना देखने से ६ मास आयु शेष और दूध वमन करना देखने से पुत्र प्राप्ति होती हैं।

विवाह—स्वप्न में अन्य के विवाह या विवाहोत्सव में योग देना देखने से पीड़ा, दुःख या किसी आत्मीय जन की मृत्यु और अपना विवाह देखने से मृत्यु या मृत्यु तुल्य पीड़ा होती है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

वीणा—स्वप्न में अपने द्वारा वीणा बजाना देखने से पुत्र प्राप्ति; दूसरे के द्वारा वीणा बजाना देखने से मृत्यु या मृत्यु तुल्य पीड़ा होती है।

शृङ्ग—स्वप्न में शृङ्ग और नख वाले पशुओं का मारने के लिये दौड़ना देखने से राजभय और मारते हुए देखने से रोग होता है।

स्त्री—स्वप्न में श्वेत वस्त्र परिहिता, हाथों में श्वेत पुष्प या माला धारण करने वाली एवं सुन्दर आभूषणों से सुशोभित स्त्री के देखने तथा आलिङ्गन करने से धन-प्राप्ति और रोग-मुक्ति होती है। परस्त्रियों का लाभ होना अथवा आलिङ्गन करना देखने से शुभ फल होता है। पीतवस्त्र परिहिता और पीत पुष्प या पीत माला धारण करने वाली स्त्री को स्वप्न में देखने से कल्याण; समवस्त्र परिहिता, मुक्तकेशी और कृष्णवर्ण के दाँत वाली स्त्री का दर्शन या आलिङ्गन करना देखने से ६ मास के भीतर मृत्यु और कृष्णवर्णवाली, पापिनी, आचार विहीना, लम्ब-केशी, लम्बे स्तनवाली और मैले वस्त्र परिहिता स्त्री का दर्शन और आलिङ्गन करना देखने से शीघ्र मृत्यु होती है।

तिथियों के अनुसार स्वप्न का फल—

शुक्लपक्ष की प्रतिपदा—इस तिथि में स्वप्न देखने पर विलम्ब से फल मिलता है।

शुक्लपक्ष की द्वितीया—इस तिथि में स्वप्न देखने पर विपरीत फल होता है—अपने लिये देखने से दूसरे को और दूसरे के लिये देखने से अपने को फल मिलता है।

शुक्लपक्ष की तृतीया—इस तिथि में भी स्वप्न देखने से विपरीत फल मिलता है, पर फल की प्राप्ति विलम्ब से होती है।

शुक्लपक्ष की चतुर्थी और पंचमी इन तिथियों में स्वप्न देखने से दो महीने से लेकर दो वर्ष के भीतर तक फल मिलता है।

शुक्लपक्ष की षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी और दशमी—इन तिथियों में स्वप्न देखने से शीघ्र फल की प्राप्ति होती है तथा स्वप्न सत्य निकलता है।

शुक्लपक्ष की एकादशी और द्वादशी इन तिथियों में स्वप्न देखने से विलम्ब से फल होता है।

शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी और चतुर्दशी—इन तिथियों में स्वप्न देखने से स्वप्न का फल नहीं मिलता है तथा स्वप्न मिथ्या होते हैं।

पूर्णिमा—इस तिथि के स्वप्न का फल अवश्य मिलता है।

कृष्णपक्ष की प्रतिपदा—इस तिथि के स्वप्न का फल नहीं होता है।

कृष्ण पक्ष की द्वितीया—इस तिथि के स्वप्न का फल विलम्ब से मिलता है। मतान्तर से इसका स्वप्न सार्थक होता है।

कृष्ण पक्ष की तृतीया और चतुर्थी—इन तिथियों के स्वप्न मिथ्या होते हैं।

कृष्ण पक्ष की पंचमी और षष्ठी—इन तिथियों के स्वप्न दो महीने बाद और ३ वर्ष के भीतर फल देने वाले होते हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कृष्ण पक्ष की सप्तमी—इस तिथि का स्वप्न अवश्य शीघ्र ही फल देता है।

कृष्ण पक्ष की अष्टमी और नवमी—इन तिथियों के स्वप्न विपरीत फल देने वाले होते हैं।

कृष्णपक्ष की दशमी, एकादशी, द्वादशी और त्रयोदशी इन तिथियों के स्वप्न मिथ्या होते हैं।

कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी—इस तिथि का स्वप्न सत्य होता है तथा शीघ्र ही फल देता है।

अमावस्या—इस तिथि का स्वप्न मिथ्या होता है।

जैन निमित्त शास्त्र के आधार पर कुछ विशिष्ट स्वप्नों के फल

धनप्राप्ति सूचक स्वप्न—स्वप्न में हाथी, घोड़ा, बैल और सिंह के ऊपर बैठकर गमन करता हुआ देखे तो शीघ्र धन मिलता है। पहाड़, नगर, ग्राम, नदी और समुद्र इनके देखने से भी अतुल लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। तलवार, धनुष और बन्दूक आदि से शत्रुओं को ध्वन्स करता हुआ देखने से अपार धन मिलता है। स्वप्न में हाथी, घोड़ा, बैल, पहाड़, वृक्ष और गृह इन पर आरोहण करता हुआ देखने से भूमिके नीचे से धन मिलता है। स्वप्न में नख और रोम से रहित शरीर के देखने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। स्वप्न में दही, छत्र, फूल, चमर, अन्न, वस्त्र, दीपक, ताम्बूल, सूर्य, चन्द्रमा, पुष्प, कमल, चन्दन, देव-पूजा, वीणा और अस्त्र देखने से शीघ्र ही अर्थ लाभ होता है। यदि स्वप्न में चिड़िया के पर पकड़कर उड़ता हुआ देखे तथा आकाश मार्ग में देवताओं की दुन्दुभि की अवाज सुने तो पृथ्वी के नीचे से शीघ्र धन मिलता है।

सन्तानोत्पादक स्वप्न—स्वप्न में वृषभ, कलश, माला, गन्ध, चन्दन, श्वेत पुष्प, आम्र, अमरूद, केला, सन्तरा, नीबू और नारियल इनकी प्राप्ति होने से तथा देव, मूर्त्ति, हाथी, सत्पुरुष, सिद्ध, गन्धर्व, गुरु, सुवर्ण, रत्न, जौ, गेहू, सरसों, कन्या, रक्त-पान करना, अपनी मृत्यु देखना, केला, कल्पवृक्ष, तीर्थ, तोरण, भूषण, राज्य मार्ग, और मट्ठा देखने से शीघ्र सन्तान की प्राप्ति होती है। किन्तु फल और पुष्पों का भक्षण करना देखने से सन्तान मरण तथा गर्भपात होता है।

मरण सूचक स्वप्न—स्वप्न में तैल मले हुए, नग्न होकर भैंस, गधे, ऊँट कृष्ण, बैल और काले घोड़े पर चढकर दक्षिण दिशा की ओर गमन करना देखने से; रसोई गृह में, लाल पुष्पों से परिपूर्ण वन में और सूतिका गृह में अंगभंग पुरुष का प्रवेश करना देखने से; झूलना गाता, खेलना, फोड़ना, हँसना, नदी के जल में नीचे चले जाना तथा सूर्य, चन्द्रमा, ध्वजा और ताराओं का गिरना देखने से; भस्म, घी, लोह, लाख, गीदड़, मुर्गा, बिलाव, गोह, न्योला, बिच्छू, मक्खी, सर्प और विवाह आदि उत्सव देखने से एवं स्वप्न में दाढ़ी, मूँछ और सिर के बाल मुँडवाना देखने से मृत्यु होती है।

रोगोत्पादक स्वप्न—स्वप्न में नेत्रों का रोग होना, कूप, गड़हा, गुफा, अन्धकार और बिल में गिरना देखने से; कचौड़ी, पूआ, खिचड़ी और पक्वान्न का भक्षण करना देखने से;

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

गरम जल, तैल और स्निग्ध पदार्थों का पान करना देखने से; काले, लाल और मैले वस्त्रों का पहनना देखने से; बिना सूर्य का दिन, बिना चन्द्रमा और तारों की रात्रि और असमय में वर्षा का होना देखने से; शुष्क वृक्ष पर चढ़ना देखने से; हँसना और गाना देखने से एवं भयानक पुरुष को पत्थर मारता हुआ देखने से शीघ्र रोग होता है।

शीघ्र पाणिग्रहण सूचक स्वप्न—स्वप्न में बालिका, मुरगी, और क्रौंच पक्षी के देखने से; पान, कपूर, अगर, चन्दन और पीले फूलों की प्राप्ति होना देखने से रण, जुआ और विवाद में विजय होना देखने से; दिव्य वस्त्रों का पहनना देखने से; सुवर्ण और चाँदी के वर्तनों में खीर का भोजन करना देखने से एवं श्रेष्ठ पूज्य पुरुषों का दर्शन करने से शीघ्र विवाह होता है।

पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार स्वप्नों के फल

यों तो पाश्चात्य विद्वानों ने अधिकांश रूप से स्वप्नों को निस्सार बताया है, पर कुछ ऐसे भी दार्शनिक हैं जो स्वप्नों को सार्थक बतलाते हैं। उनका मत है कि स्वप्न में हमारी कई अतृप्त इच्छाएँ ही चरितार्थ होती हैं। जैसे हमारे मन में कहीं भ्रमण करने की इच्छा होने पर स्वप्न में यह देखना कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि हम कहीं भ्रमण कर रहे हैं। सम्भव है कि जिस इच्छा ने हमें भ्रमण का स्वप्न दिखाया है वही कालान्तर में हमें भ्रमण करावे। इसलिये स्वप्न में भावी घटनाओं का आभास मिलना साधारण बात है। कुछ विद्वानों ने इस थ्योरी का नाम Law of probability (सम्भाव्य गणित) रखा है। इस सिद्धान्त के अनुसार कुछ स्वप्न में देखी गई अतृप्त इच्छाएँ सत्यरूप में चरितार्थ होती हैं, क्योंकि बहुत समय कई इच्छाएँ अज्ञात होने के कारण स्वप्न में प्रकाशित रहती है और ये ही इच्छाएँ किसी कारण से मन में उदित होकर हमारे तदनुरूप कार्य करा सकती हैं। मानव अपनी इच्छाओं के बल से ही सांसारिक क्षेत्र में उन्नति या अवनति करता है, उसके जीवन में उत्पन्न होने वाली अनन्त इच्छाओं में कुछ इच्छाएँ अप्रस्फुटित अवस्था में ही विलीन हो जाती हैं, लेकिन कुछ इच्छाएँ परिपक्वावस्था तक चलती रहती हैं। इन इच्छाओं में इतनी विशेषता होती है कि ये बिना तृप्त हुए लुप्त नहीं हो सकतीं। सम्भाव्यगणित के सिद्धान्तानुसार जब स्वप्न में परिपक्वावस्थावाली अतृप्त इच्छाएँ प्रतीकाधार को लिए हुए देखी जाती हैं, उस समय स्वप्न का भावी फल सत्य निकलता है। अबाधभावानुसङ्ग से हमारे मन के अनेक गुप्तभाव प्रतीकों से ही प्रकट हो जाते हैं, मनकी स्वाभाविकधारा स्वप्न में प्रवाहित होती है जिससे स्वप्न में मन की अनेक चिन्ताएँ गुत्थी हुई प्रतीत होती हैं। स्वप्न के साथ संश्लिष्ट मन की जिन चिन्ताओं और गुप्त भावों का प्रतीकों से आभास मिलता है, वही स्वप्न का अव्यक्त अंश (Latent Content) भावी फल के रूप में प्रकट होता है। अस्तु, उपलब्ध सामग्री के आधार पर कुछ स्वप्नों के फल नीचे दिये जाते हैं—

अस्वस्थ—अपने सिवाय अन्य किसी को अस्वस्थ देखने से कष्ट होता है और स्वयं अपने को अस्वस्थ देखने से प्रसन्नता होती है। जी० एच० मिलर के मत के स्वप्न में स्वयं

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अपने को अस्वस्थ देखने से कुटुम्बियों के साथ मेल-मिलाप बढ़ता है एवं एक मास के बाद स्वप्न द्रष्टा को कुछ शारीरिक कष्ट भी होता है तथा अन्य को अस्वस्थ देखने से द्रष्टा शीघ्र रोगी होता है। डाक्टर सी० जे० ह्विटवे के मतानुसार अपने को अस्वस्थ देखने से सुख शान्ति और दूसरे को अस्वस्थ देखने से विपत्ति होती है। शुकरात के सिद्धान्तानुसार अपने और दूसरे को अस्वस्थ देखना रोग सूचक है। बिब्लोनियन और पृथग गोरियन के सिद्धान्तानुसार अपने को अस्वस्थ देखना नीरोग सूचक और दूसरे को अस्वस्थ देखना पुत्र, मित्रादि के रोग को प्रकट करने वाला होता है।

आवाज—स्वप्न में किसी विचित्र आवाज के स्वयं सुनने से अशुभ-सन्देश सुनने को मिलता है, यदि स्वप्न की आवाज सुनकर निद्रा भंग हो जाती है तो सारे कार्यों में परिवर्तन होने की संभावना होती है। अन्य किसी को आवाज सुनते हुए देखने से पुत्र और स्त्री को कष्ट होता है तथा अपने अति निकट कुटुम्बियों को आवाज सुनते हुए देखने से किसी आत्मीय की मृत्यु प्रकट होती है। डा० जी० एच० मिलर के मत से आवाज सुनना भ्रम का द्योतक है।

ऊपर—यदि स्वप्न में कोई चीज अपने ऊपर लटकती हुई दिखलाई पड़े और उसके गिरने का सन्देह हो तो शत्रुओं के द्वारा धोखा होता है। ऊपर गिर जाने से धन नाश होता है, यदि ऊपर न गिरकर पास में गिरती है तो धन-हानि के साथ स्त्री, पुत्र एवं अन्य कुटुम्बियों को कष्ट होता है। जी० एच० मिलर के मत से किसी भी वस्तु का ऊपर गिरना धन नाश कारक है। डा० सी० जे ह्विटवे के मत से किसी वस्तु के ऊपर गिरने से तथा गिरकर चोट लगने से मृत्यु तुल्य कष्ट होता है।

कटार—स्वप्न में कटार के देखने से कष्ट और कटार चलाते हुए देखने से धन हानि तथा निकट कुटुम्बी के दर्शन, मान्स भोजन एवं पत्नी से प्रेम होता है। किसी-किसी के मत से अपने में स्वयं कटार भौंकते हुए देखने से किसी के रोगी होने के समाचार सुनाई पड़ते हैं।

कनेर—स्वप्न में कनेर के फूले वृक्ष का दर्शन करने से मान प्रतिष्ठा मिलती है। कनेर के वृक्ष से फूल और पत्तों को गिरना देखने से किसी निकट आत्मीय की मृत्यु होती है। कनेर का फल भक्षण करना रोग सूचक है तथा एक सप्ताह के भीतर अत्यन्त अशान्ति देने वाला होता है। कनेर के वृक्ष के नीचे बैठकर पुस्तक पढ़ता हुआ अपने को देखने से दो वर्ष के बाद साहित्यिक क्षेत्र में यश की प्राप्ति होती है एवं नये-नये प्रयोगों का आविष्कर्त्ता होता है।

किला—किले की रक्षा के लिये लड़ाई करते हुए देखने से मानहानि एवँ चिन्ताएँ; किले में भ्रमण करने से शारीरिक कष्ट; किले के दरवाजे पर पहरा लगाने से प्रेमिका से मिलन एवं मित्रों की प्राप्ति और किले के देखने मात्र से परदेशी बन्धु से मिलन होता है तथा सुन्दर स्वादिष्ट मान्स भक्षण को मिलता है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

केला—स्वप्न में केला का दर्शन शुभ फलदायक होता है और केले का भक्षण अनिष्ट फल देने वाला होता है। किसी के हाथ से जबरदस्ती केला लेकर खाने से मृत्यु और केले के पत्तों पर रखकर भोजन करने से कष्ट एवं केले के थम्भे लगाने से घर में माङ्गलिक कार्य होते हैं।

केश—किसी सुन्दरी के केशपास का स्वप्न में चुम्बन करने से प्रेमिका मिलन और केश के दर्शन से मुकदमे में पराजय एवं दैनिक कार्यों में असफलता मिलती है।

खल—स्वप्न में किसी खल (दुष्ट) के दर्शन करने से मित्रों से अनबन और लड़ाई करने से मित्रों से प्रेम होता है। खल के साथ मित्रता करने से नाना भय और चिन्ताएँ होती हैं। खल के साथ भोजन-पान करने से शारीरिक कष्ट; बातचीत करने से रोग और उसके हाथ से दूध लेने से सैकड़ों रुपयों को प्राप्ति होती है। किसी-किसी के मत से खल का दर्शन शुभ माना गया है।

खेल—स्वप्न में खेल खेलते हुए अपने को देखने से स्वास्थ्य वृद्धि और दूसरों को खेलते हुए देखने से ख्याति लाभ होता है। खेल में अपने को पराजित देखने से कार्य साफल्य और जय देखने से कार्य हानि होती है। खेल के मैदान का दर्शन करने से युद्ध में भाग लेना का संकेत होता है। खिलाड़ियों का आपस में मल्लयुद्ध करते हुए देखना बड़े भारी रोग का सूचक है।

गाय—यदि स्वप्न में कोई गाय दूध दुहने की इन्तजारी में बैठी हुई दिखलाई पड़े तो सभी इच्छाओं की पूर्त्ति होती है। गाय का दर्शन जी० एच० मिलर के मत से प्रेमिका मिलन सूचक बताया गया है। चारा खाते हुए गाय को देखने से अन्न प्राप्ति; बछड़ा पिलाते हुए देखने से पुत्र प्राप्ति; गोबर करते हुए गाय को देखने से धन प्राप्ति और पागुर करते हुए देखने से कार्य में सफलता मिलती है।

घड़ी—स्वप्न में घड़ी देखने से शत्रु भय होता है। घड़ी के घण्टों की आवाज सुनने से दुःखद संवाद सुनते हैं या किसी मित्र की मृत्यु का समाचार सुनाई पड़ता है। किसी के हाथ से घड़ी गिरते हुए देखने से मृत्यु तुल्य कष्ट होता है। अपने हाथ की घड़ी का गिरना देखने से छः महीने के भीतर मृत्यु होती है।

चाय—स्वप्न में चाय का पीना देखने से शारीरिक कष्ट, प्रेमिका वियोग एवं व्यापार में हानि होती है। मतान्तर से चाय-पीना शुभकारक भी है।

जन्म—यदि स्वप्न में कोई स्त्री बच्चे का जन्म देखे तो उसकी किसी सखी सहेली को पुत्र प्राप्ति होती है तथा उसे उपहार मिलते हैं। यदि पुरुष यही स्वप्न देखे तो उसे यश प्राप्ति होती है।

झाड़ू—यदि स्वप्न में नया झाड़ू दिखाई पड़े तो शीघ्र ही भाग्योदय होता है। पुराने झाड़ू का दर्शन करने से सट्टे में धन हानि होती है। यदि स्त्री इसी स्वप्न को देखे, तो उसे भविष्य में नाना कष्टों का सामना करना पड़ता है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

Om

The JAINA ANTIQUARY

" श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात् त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥ "
[अकलंकदेव]

Vol. X
No. II

ARRAH (INDIA)

January,
1945,

A CRITICAL EXAMINATION OF ŚVETĀMBARA AND DIGAMBARA CHRONOLOGICAL TRADITIONS

By

Prof.—H. C. Seth, M. A., Ph., D. (London)

Both the Śvetāmabara and the Digambara sects of the Jains have preserved certain chronological traditions. A comparative study of these may yield useful results. The most importatnt of these Jain chronologies is the Śvetāmbara one given in Tapāgaccha paṭṭavalī[1]. and Merutuṅga's Vicārśreṇī[2], which has been made familiar by

---

1 जं रयणिं कालगओ अरिहा तित्थंकरो महावीरो ।
तं रयणिं अवणिवई अहिसित्तो पालओ राया ॥१॥
सट्ठी (६०) पालयरण्णो पणवण्णसयं तु होइ नंदाणं (१५५) ।
अट्ठसयं मुरियाणं (१०८) तीसच्चिअ पूसमित्तस्स (३०) ॥२॥
बलमित्त-भाणुमित्ता सट्ठी (६०) वरिसाणि चत्त नहवाणे (४०) ।
तह गद्दभिल्लरज्जं तेरस (१३) वरिस सगस्स चऊ (४) ॥३॥

Tapāgachha Paṭṭavalī.

2 जं रयणिं कालगओ अरिहा तित्थंकरो महावीरो ।
तं रयणिमवंतिवई अहिसित्तो पालगो राया ॥
(वीरनिव्वाणरयणीओ चंडपज्जोयरायपट्टम्मि ।
उज्जेणीए जाओ पालयनामा महाराया ॥)
सट्ठी पालगरन्नो पणवन्नसयं तु होइ नन्दाणं ।
अट्ठसयं मुरियाणं तीसच्चिय पूसमित्तस्स ॥

Ac. Gunratnasuri MS
Jin Gun Aradhak Trust

European scholars like Būhler, Jacobi and Charpentier. This tradition puts Mahāvīra Nirvāṇa 470 years before the Vikrama era. As the beginning of the Vikrama era synchronises with 58 B.C. this tradition gives 528 B.C. as the date of Mahāvīra Nirvāṇa. This tradition also records that Mahāvīra died on the same night as Pālaka was anointed king in Avantī, and 470 years between Mahāvīra Nirvāna and the commencement of the Vikrama era are made up of the reign-periods of the following kings and dynasties :

			Years.
Pālaka	...	...	60
Nandas	...	...	155
Mauryas	...	...	108
Pusyamitra	...	...	30
Balamitra and Bhānumitra		...	60
Nahavāṇa or Nahavahaṇa		...	40
Gardabhilla	...	...	13
Śakas	...	...	4
			470

After this in Merutuṅga's Vicārśreṇī we have 135 years assigned to Vikramādiṭya and his dynasty, after which, or 605 years after Mahāvīra Nirvāṇa, comes the Śaka king who displaces the dynasty of Vikramāditya.

Much credit has not been given by modern scholars to the Jain traditional date of 528 B.C. for the death of Mahāvīra, as this date puts too big a gap between Buddha, who as is now generally believed died within a few years of 480 B. C., and Mahāvīra to make them contemporaneous, which fact is so clearly implied in both the Buddhist as well as the Jain traditions. But unfortunately the whole of this chronological tradition is lightly set aside as useless. As jarl

बलमित्त-भाणुमित्ताण सट्ठि वरिसाणि चत्त नहवहणे ।
तह गद्दभिल्लरज्जं तेरस वासे सगस्स चऊ ॥
विक्कमरज्जाणंतरसतरसवासेहिं वच्छुरपवित्ती ।
सेसं पुण पणतीससयविक्कमकालम्मि य पविट्ठं ॥
विक्कमरज्जारंभा परओ सिरिवीरनिव्वुई भणिया ।
सुन्न-मुणि-वेय-जुत्तो विक्कमकालाउ जिणकालो ॥
श्रीवीरनिर्वृतेर्वर्षैः षड्भिः पञ्चोत्तरैः शतैः ।
शाकसंवत्सरस्यैषा प्रवृत्तिर्भरतेऽभवत् ॥

Merutuṅga's Vicārśreṇī.

Charpentier observes, "The Jains themselves have preserved Chronological records concerning Mahāvīra and the succeeding pontiffs of the Jain church, which may have been begun at a comparatively early date. But it seems quite clear that, at the time when these lists were put into their present form, the real date of Mahāvīra had already either been forgotten or was at least doubtful. The traditional date of Mahāvīra's death on which the Jains base their chronological calculations corresponds to the year 470 before the foundation of the Vikrama era in 58 B.C., i.e. 528 B C. This reckoning is based mainly on a list of kings and dynasties, who are supposed to have reigned between 528 and 58 B.C., but the list is absolutely valueless, as it confuses rulers of Ujjain, Magadha, and other kingdoms and some of these may perhaps have been contemporary, and not successive as they are represented."[1]

It is not correct to treat these Jain chronological traditions as referring to the kings of Magadha. In fairness to these traditions it should be noted that all the kings and dynasties mentioned in these are definitely known to be connected with Central and Western India, of course, some of them ruled over a big empire covering other parts of India including Magadha. It may be useful to estimate the truth underlying these traditions by comparing them with other Jain chronological traditions, and also with the Paurāṇic and the Buddhist traditions bearing on them. We must however remember, as pointed out by Merutuṅga[2], that in these traditions complete dynastic list in each case is not given and sometimes only certain important ruler is mentioned, and under his name total reign of the whole dynasty given.

We have another Śvetāmbara Jain chronological tradition, slightly different than the above, given in Titthagolīpainnaya, which gives the following chronology[3].

---

1 Cambridge History of India Vol. I P. 155-156. See als IA. Vol. XLIII P. 118 ff.

2 इह यदा यो राजा ख्यातिमानभूत्, तदा—
तस्य राज्यं गण्यते, न तु पट्टानुक्रमः । Vicārsreṇī.

3 जं रयणिं सिद्धिगओ अरहा तित्थंकरो महावीरो ।
तं रयणिं अवंतीए अभिसित्तो पालओ राया ॥६२०॥
पालगरण्णो सट्ठी पुण पण्णासयं वियाणि नन्दाणं ।
मुरियाणं सट्ठिसयं पणतीसा पुस्समित्ताणं (त्तस्स) ॥६२१॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

Pālaka	...	... 60	years.
Nandas	...	... 150	,,
Mauryas	...	... 160	,,
Puṣyamitra	...	... 35	,,
Balamitra & Bhānumitra		... 60	,,
Nabhasena	...	... 40	,,
Gadabhas	...	... 100	,,

This tradition also places the Śaka king after Gadabhas, 605 years after Mahāvira's Nirvāṇa.

The Digambara sect of the Jains has preserved chronological traditions, which excepting in one or two important respects are not far different from the Śvetāmbara ones given above. Tiloyapaṇṇati[1] and Jinsena's Harivaṁśa Purāṇa[2], important Digambara

---

बलमित्ता-भाणुमित्ता सट्ठा चत्ता य हौंति नभसेणो ।
गद्दभसयं एकं पुण पडिवन्नो तो सगो राया ॥६२२॥
पंच मासा पंच य वासा छच्चेव हौंति वाससया ।
परिनिव्वुअस्सऽरिहतो तो उप्पन्नो सगो राया ॥६२३॥

Shantilal Shah: "The Traditional Chronology of the Jainas." P. 16 f.

Shah regards Titthagolīpainnya as the oldest Jain Chronological work. He assigns it to the early part of the fourth century A D-

The above verses from Tithagolīpainnya are also quoted by Muni Darshan Vijya in his "Paṭṭavalī Samucaya." P. 197.

1 जक्काले वीरजिणो णिस्सेयससंपयं समावण्णो ।
तक्काले अभिसित्तो पालयणामो अवंतिसुदो ॥१५०५॥
पालकरज्जं सट्ठि इगिसयपणवण्ण विजयवंसभवा ।
चालं मुरुदयवंसा तीसं वस्सा सुपुस्समित्तस्स ॥१५०६॥
वसुमित्तअग्गिमिता सट्ठी गंधव्वया वि सयमेक्कं ।
णरवाहणा य चालं तत्तो भत्थट्ठणा जादा ॥१५०७॥
भत्थट्ठणाण कालो दोण्णि सयाइं हवंति बादाला ।
तत्तो गुत्ता ताणं रज्जे दोण्णि य सयाणि इगितीसा ॥१५०८॥
तत्तो कक्की जादो इंदसुदो तस्स चउ मुहो णामो ।
सत्तरि वरिसा आऊ विगुणियइगिवीस रज्जंतो ॥१५०९॥
णिव्वाणे वीराजिणे छव्वाससदेसु पंचवरिसेसुं ।
पणमासेसु गदेसुं संजादो सगणिओ अहवा ॥१४९९॥

Tiolyapaṇṇati (Jīlvaraja Granthmala. Sholapur, under print.)

2 वीरनिर्वाणकाले च पालकोऽत्राभिषिच्यते । लोकेऽवंतिसुतो राजा प्रजानां प्रतिपालकः ॥४८७॥
षष्टिवर्षाणि तद्राज्यं ततो विजयभूभुजां । शतं च पंचपंचाशद्वर्षाणि तदुदीरितं ॥४८८॥
चत्वारिंशत्पुरूढानां भूमंडलमखंडितं । त्रिंशत्तु पुष्पमित्राणां षष्टिर्वस्वग्निमित्रयोः ॥४८९॥
शतं रासभराजानां नरवाहनमप्यतः । चत्वारिंशत्ततो द्वाभ्यां चत्वारिंशच्छतद्वयं ॥४९०॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

texts, give the following chronology :—

			Year.
Pālaka	...	...	60
Vijya Kings (Nandas?)		...	155
Muruda Kings (Mauryas?)		...	40
Puṣyamitra	...	...	30
Vasumitra and Agnimitra		...	60
Gandhavas or Rāsabhas		...	100
Narvahāṇa	...	...	40
Bhathaṭṭhaṇa	...	...	242
Guptas	...	...	231
Kalki	...	...	42

This tradition thus gives 1000 years between the death of Mahāvīra and the end of the reign of Kalki. These Digambara texts also separately record that 605 years elapsed between Mahāvīra Nirvāṇa and the Śaka king, but unlike the Śvetāmbara ones, they do not give any details of the reign-period during this interval.

All the Jain traditions given above assign 60 years to Pālaka. This may include not only the reign-period of Pālaka but also of his descendents. Sixty years of the reign-period for Pālaka is implied by the tradition reported by Hemacandra who says that Nanda became king sixty years after Mahāvīra Nirvāṇa[1]. This probably refers to Nandivardhana, who succeeded Pālaka's dynasty in Ujjain.

भद्रवाणस्य तद्राज्यं गुप्तानां च शतद्वयं । एकविंशश्च वर्षाणि कालविद्भिरुदाहृतं ॥४६१॥
द्विचत्वारिंशदेवातः काल्किराजस्य राजता । ततोऽजितंजयो राजा स्यादिंद्रपुरसंस्थितः ॥४६२॥
वर्षाणां षट्शतीं त्यक्त्वा पंचाग्रं मासपंचकं । मुक्तिं गते महावीरे शकराजस्ततोऽभवत् ॥५५१॥
मुक्तिं गते महावीरे प्रतिवर्ष सहस्रकं । एकैको जायते कल्की जिनधर्मविरोधकः ॥५५२॥

Jinasena Harivaṁśa Purāṇa Ch. 60.

In the manuscript of this work used by K. B. Pathak, Guptas are given 231 years, गुप्तानां च शतद्वयम् । एकत्रिंशच्च वर्षाणि कालविद्भिरुदाहृतम् ॥
(In Art. Vol. XV P, 142,)

It we assign 231 years to the Guptas then only we shall get 1000 years, mentioned in these traditions as the interval between the death of Mahāvīra and that of Kalki. 231 years for the Guptas also given in Tiloyapaṇṇati appear to be the correct version.

The Ms. used by Pathak has Muruḍa instead of Puruḍa and Bhaṭṭavaṇa instead of Bhadravāṇa. The Ms. used by Jayaswal (In Ar. Vol, 46) has Vijya instead of Vishya and Bhaṭṭavāṇa instead of Bhadravāṇa.

1 अनन्तरं वर्द्धमानस्वामिनिर्वाण—वासरात्
गतायां षष्ठिवत्सर्यामेष नन्दोऽभवन्नृपः (परि० ६, २४३) ·

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

The Purāṇas record conflicting chronologies for the Pradyota dynasty. However certain Paurāṇic traditions seem to indicate that five kings in Pradyota line, all of whom appear to be his sons, perished after a reign of 52 years[1]. This comes near the sixty years assigned to Pradyota's son Pālaka in the Jain traditions.

As regards the Nandas the Jain traditions given above assign to them a period of 155 or 150 years. On the other hand, as noticed above, Hemacandra gives 155 years between the death of Mahāvīra and the accession of Candragupta Maurya[2], which may not be far from truth. If we knock out of this period 60 years assigned by him as the period between the death of Mahāvīra and the accession of the Nanda King, it will leave 95 years for the Nandas. The ceylonese Buddhist traditions seem to give 90 years to the same dynasty[3]. The Purāṇas again record conflicting chronological traditions about the Nanda dynasty. But a total of hundred years for all the Nandas is suggested by certain Paurāṇic traditions, which say that after the Nandas had reigned for one hundred years Kautilya uprooted them, and the sovereignty passed on to the Mauryas . This may be more or less correct tradition.

As regards the Mauryas there seems to be great uncertainty about their reign-period in the Jain traditions given above. One Śvetāmbara tradition assigns 160 years to the Mauryas another 108 years, and the Digambara traditions assign to this dynasty only 40 years. The last seems to be of no value as the reign-period of the first three great Mauryas, Candragupta, Bindusāra and Aśoka, itself comes to 85 years according to the unanimous tradition recorded in

1 Pargiter DKA. P. 68

2 एवं च श्रीमहावीरमुक्तेर्वर्षशते गते ।
पंच-पंचाशदधिके चन्द्रगुप्तोऽभवन्नृपः ॥ (परि, ८, ३३९)

3 Susunāga ... 18.
Kālāsoka ... 28.
Ten sons of Kālāsoka ... 22.
Nine Nandas ... 22. Cam. Hist. of India, Vol. I. P. 189.

Susunāga of the Buddhist traditions has been correctly identified with Nandwardhana and Kālāsoka with Mahanandin by S,N, Pradhan, "Chronology of Ancient India" P, 220 ff,

4 Pargiter, DKA, P. 69.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

the Purāṇas[1], and 93 years according to the Ceylonese Buddhist traditions[2]. There is also no doubt, as is evidenced by inscriptional records as well as the traditional accounts, that the rule of these first three great Mauryas extended to Central and Western India. The association of Samprati, grandson of Aśoke and a great patron of Jainism, with Central and Western India is also very strongly attested by the Jain traditions[3]. Only in certain Purāṇas we get a complete record of the chronology of the Maurya kings, which is as follows[4] :

Candragupta	... ...	24 years
Bindusara	... ...	25 „
Aśoka	....	36 „
Kunāla	... ...	8 „
Bandhupālita	... ...	8 „
Daśona	... ...	7 „
Daśaratha	... ...	8 „
Samprati	... ...	9 „
Śāliśuka	... ...	13 „
Devadharman or Devavarman	...	7 „
Śatadhanvan	... ...	8 „
Brithadratha	... ...	7 „
	Tatal ···	160 years.

Against this total of 160 years contained by adding the reign-periods of the various Maurya Kings. Some of the Purāṇas give a total of 137 years for the Maurya dynasty. A comparison of the Paurāṇic and the Jain traditions concerning the reign-period of the Mauryas will make us give more credit to a total reign-period of 160 years to this dynasty. In any case it must be noted that if we assign 100 years to the Nandas and 160 years to the Mauryas we get a total of

1 The *Purāṇas* give the following reing-periods for these monarchs. Candragupta 24 years. Bindusāra...25 years. Aśoka···36 years.
Pargiter, DKA. P. 70.

2. The traditions as preserved in Mahāvaṁśa give the following chronology of the reign of these three kings.
Candragupta 24 years, Bindusāra 28 years, Aśoka 41 years.
(Four years before his coronation and 37 years after it.)

3. We gather from the Jain work Dipalike Kalpa of Jinsundara that Samprati became king of Ujjain 300 years after Mahāvira Nirvāṇa.
दिनतो मम मोक्षस्य गते वर्षशतत्रये । उज्जयिन्यां महापुर्यां भावी संप्रति भूपतिः ॥

4 Pargiter DKA.
Also compare Cam. Hist. of India. Vol. I. P. 511.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

260 years for these two dynasties, which is very near 263 years (155 + 108) assigned to these two dynasties in the traditions recorded in Tapāgaccha Paṭṭavalī and in Merutuṅga's Vicārśreṇī.

After the Mauryas all the Jain traditions except one assign 30 years to Puṣyamitra, and after him some traditions assign 60 years to his son and grandson, Agnimitra and Vasumitra, others assign these 60 years to Balamitra and Bhāṇumitra, who also, appear to belong to the Śuṅga dynasty. Against the 90 years assigned to the Śuṅgas in the Jain traditions, the Purāṇas assign a total reign-period of 112 years to this dynasty. This discrepancy between the Jain and the Paurāṇic total for this dynasty may be due to the fact the Jain traditions give its reign-period in Central and Western India, where as the Paurāṇic traditions record the total reign-period of the dynasty of Magadha. As suggested by the rise of the Andhras the influence of the Śuṅgas ceased earlier in Central and Western India than perhaps in Magadha and Eastern India. The Sāñchī inscriptions of the Andhra king Śātakarṇī[1] may indicate that the influence of this dynasty had reached Central India in the first Century B. C. On the other hand "it is indeed doubtful if the Andhras ever ruled in Magadha"[2] Ninety years of the reign-period in Central and Western India assigned to the Śuṅgas in the Jain records may be a correct tradition.

So far from Pālaka down to the end of the Śuṅgas the dynastic succession list, apart from differing reign-period in certain cases, is the same in all the Jain traditions. It is after this that serious discrepancy appears amongst the various Jain traditions The Śvetāmbara traditions quoted above from Merutuṅga's Vicārśreṇī, Tapāgachha Paṭṭavalī and Titthagolīpainnaya place 40 years of Nahavāṇa after Balamitra and Bhanumitra. After Nahavāṇa Tappāgachha Paṭṭavalī and Vicārṣreṇī assign 13 years to Gardabhila and 4 to the Śakas.

To be continued.

1. Lüders, 'List of Brahmi Inscriptions No. 346'.
2. Cambridge History of India Vol- I. P, 224,

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

TAVANIDHI AND ITS INSCRIPTIONS

By
Prof. Dr. A. N. Upadhye.

Tavanidhi is a Jaina holy place, situated on the left side of Poona to Bangalore road, a couple of miles to the south of Nipani in the Belgaum District. Its name is variously written : Tavanidhi, Stavanidhi, Tavandi, Tavadi etc. There is a village called Tavandi on the top of the hillock; in the angular valley we have a huge stone building containing a row of temples, five in number; and this holy shrine is lately famous as Śrī Kṣetra Stavanidhi There is a huge stone enclosure with a series of rooms going round (*Pauli.* as it is called); lately, however, the Eastern wall is fallen. Within the enclosure there is a Mānasthambha in front of the central temple; and in the corner there is a water-tank lately constructed. This constitutes the main shrine. Outside this area, but still a part of this holy place, we have (Kūga) Brahmanātha on the slope of the opposite hillock; and there is a small temple of Padmāvatī, near the lake, at a distance of a couple of furlongs to the North of the main shrine. Every month on the day of Amāvāsyā many Jainas from Northern Karṇāṭaka and Southern Mahārāṣṭra visit this place; and once in a year there is a big fair which attracts many Jaina families from longer distances. Lately some fresh buildings are built and a Gurukula is started there.

The row of temples faces the East. It falls into three units with two cammon full walls. The two units on both the sides contain two niches each. Starting from the right, the first niche contains the image of Brahmanātha or Kṣetrapāla, all literally covered or besmeared with Sendūra and oil. The second niche contains the stone image of Śāntinātha in a seated posture with Yakṣa and Yakṣī; its appearance is quite old. The central temple contains a stone idol of Pārśvanātha in standing posture, with Yakṣa and Yakṣī. It is much damaged: one suspects that the broken pieces are put together. Possibly on account of this, the image is called Navakhaṇḍa Pārśvanātha. It is also called Cintāmaṇi Pārśvanāth. Some legends are associated with it; and I am trying to collect them from oral sources. The fourth niche contains the stone idol, in standing posture, of Ādinātha with Yakṣa and Yakṣī. It is of black stone; the polish is gone; and its appearance is quite old. I could not trace

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

any inscription in the temples described above. Coming to the last temple, which would be the first from the left side, there are two images, one on the upper *pīṭha* and one on the lower *pīṭha*. The image of Pārśvanātha on the upper *pīṭha*, though smaller in size, is no doubt older in age and also the earlier occupant of that temple. On its bace we have a short inscription in Old-kannaḍa characters; it is partly effaced; but the following letters could be read :

श्रीम * द्राविडसंघद * *

The image on the lower *pīṭha* is also of Pārśvanātha, in a standing posture, with seven hoods, with *prabhā-valaya* and with Yakṣa and Yakṣī. The image is quite attractive and commands devotion. The appearance is old and the polish is fine. On its base we have two Kannaḍa inscriptions, written at different times. The handwriting clearly betrays the difference in age. The first, whose characters are definitely old, runs thus in four lines :

[१] श्रीमूलसंघ देशियगण पुस्तकगच्छद श्रीवीरणंदि
[२] सिद्धांतचक्रवर्त्तिदेवरगुड्डुसेनरसन मुत्तव्वे ल
[३] च्येयादेवियरु माडिसिद बसदि [।] रूवारि
[४] जिंणोजं माडिद प्रतिमे मंगड महा श्री श्री [॥]

Then there is a second inscription which runs thus :

[१] स्वस्ति श्रीलद्मीसेनभट्टारकस्वामि संस्थापित श्री पार्श्वनाथः शके १८०२
[२] विक्रमनामसंवत्सरे चैत्र शु ॥१२॥ सुभलग्ने

This second record tells us that the image was installed (at Tavanidhi) by Śrī Lakṣmīsena Bhaṭṭāraka in Śaka 1802 (+78=1880 A.D.), Vikrama year, Caitra Śuddha 12. This event of Pratiṣṭhāpana is still within memory of some elderly people. The presentday Śrī Lakṣmīsena Bhaṭṭārakaji tells me that this image was found near about Hukeri (Belgaum District); and that his predecessor brought it to Tavanidhi and installed it there after performing a *pratiṣṭhā-mahotsava*.

The first inscription is more important, because it is as old as the image itself. It gives the following information : The image was carved by the architect Jinnoja; the temple (in which it was first installed) was caused to be built by Lacceyādevi, the grand-mother of Senarasa; this Senarasa was a pupil of Vīraṇaṁdi Siddhānta Cakravarti of the Pustaka-gaccha, Deśiya-gaṇa, and Mūlasaṁgha.

The recording of this inscription is simultaneous with the carving of this image; and we have to see whether we can settle the date of it.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

I am inclined to suggest that in all probability the ācārya mentioned in the record in the same as Vīranandi, the author of Ācārasāra, who is also styled Śrīmad-Vīranandi-Saiddhānti-Cakravarti[1]. It is not difficult to settle his age. He wrote a Kannaḍa commentary on his own Acārasāra in Śaka 1076 (+78=1154 A. D.). Thus he flourished about the middle of the 12th century A. D. It is to this period, consequently, we should assign the Pārśvanātha image on the lower *pīṭha.* The appearance of the Kannaḍa characters also confirms this age.

Though the image of Pārśvanātha, the date of which is settled above, stands to-day at Tavanidhi, there is no doubt that it had no connection with that holy place before Śaka 1802 when it was brought from outside and established there by Śri Lakṣmīsena. I am trying to get more information about the original place of this image. Its age does not in any way shed light on the antiquity of Tavanidhi, as a holy place; and this question has to be studied from other sources.

To-day Tavanidhi is famous for Brahmanātha or Kṣetrapāla; and from what I hear from elderly people, it has been a *kṣetra* for the last one hundred years or so. Let us see whether we can push this period backward with literary and epigraphic evidence.

(1) Śīlavijaya, a Śvetāmbara Jaina monk, visited various Jaina holy places of Deccan in Saṁvat 1731-32 (−57=1674 A.D.) and wrote an account called Tīrthamālā[2]. He refers to Tavanidhi (wrongly written as Navanidhi) rather casually along with Rāyabaga and Hukeri. The contemporary ruler was Śivaji.

(2) Then going still earlier, Nayasena in his Kannaḍa Dharmāmṛta (composed on Sunday, 25th August, 1112 A. D.) refers to Pārśvanātha at Tavanidhi[3]. Apparently this is not a reference to the image of Pārśvanātha, which was brought there from outside in Śaka 1802. The characters of the inscription on the smaller image look older than those on the bigger image in the last temple. So Nayasena has in view either the smaller image of Pārśvanātha in the last temple or the Cintāmaṇi Pārśvanātha in the central temple.

Thus Tavanidhi is known to be a holy place with the image of Parśvanātha at least from the days of Nayasena, i.e., beginning of the 12th century A D. I request other scholars to shed further light on the antiquity of this Kṣetra.

1. About Vīranadis see Jaina Hitaishī, XII, pp. 213 f., Introduction to the Ācārasāra, Bombay Saṁvat 1974; Karṇāṭaka Kavicarite, Vol. I, p. 168.

(2) Premi : Jaina Sāhity aura Itihāsa, p. 238.

(3) Shastri : Sources of Karnataka History, Mysore 1940, pp. 187-88.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

Pre-historic Jaina Paintings.

By
Jyoti Prasad Jain M. A. L. L. B., Lucknow.

Mr. Panchanan Mitra, in his "Pre-historic India—Its place in the world's cultures," published by the university of Calcutta (1927 A.D.) has given, under the heading of "Pre-historic cave art and rock carvings", an account of the Raigarh cave paintings. These paintings, ths learned author tells us, "are of great interest and cannot be estimated by less than thousands of years." 'They are', he says, "much older than all that have been hitherto discovered." (Page 196),

These Singanpur paintings were discovered on the walls of a cavern, on a hill of that name, situated near Raigarh, in the central Provinces, in about the year 1910, by Mr. Anderson and company. They have, since then, been studied by various experts, and have been believed to be thousands of years old, the oldest yet discovered. The hill is well known to the villagers of Singanpur on account of the caves it contains. They further traditionally believe that there were three Mandirs (temples) on that hill, where hermits used to reside, in olden times.

The subjects of the paintings are (i) groups of figures, (ii) drawings of animals, reptiles etc., (iii) picture writing, or heiroglyphs of the Egyption type, and (iv) hunting scenes; and they suggest the existence of magic and to temistic rites, in those times. This description of those paintings, however, is based on what they appear to be to the pre-historic experts. In his book, Mr. Mitra has reproduced a few of these paintings, two of which are of particular interest to us.

(1) In plate XLV (S. 23), there are represented three human figures, standing with upraised hands and looking upwards towards a Trident (Trisul), placed erect, in the left hand corner above.

And (2) in plate XLI (S. 19) there is represented a single standing human figure. The two legs are unproportionately long. From the foot of the left leg up goes a zigzag ladder like thing, made up of eight straight lines, and touching the left leg in five points while the right leg in four points. It ends near the joint of the left thigh with the body. On the outward side of this left leg there are fourteen triangular spots, at regular intervals, from one end of the leg to the

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

other. Both the hands are raised above the head, in a semicircular form. The left hand is again made up of three triangular blocks, separated from one another.

These figures are evidently very crude and primitive, with no fineness or figurative details of the body, nor is any proportion maintained. They are merely sort of rough lineal sketches.

Now we have to examine what these crude, primitive and pre-historic paintings, in the form of what appear to be mystic symolicisms, and found worked out on the walls of certain very ancient caves on a hill, far from habitation, and till recently believed to be abodes of ascetic hermits, do really represent. Let us consider fig. (1) first.

The three obviously human beings are looking upwards towards the (Trident), with both of their hands raised up. It is, therefore, clear that this symbol—the Trident—represents to them some very high and sacred object. It is true, there are no facial expressions to elucidate their emotions, the form and the pose of the figures is amply suggestive of the devotional attitude of those persons towards this symbolic representation. Found in the far off hilly caves known as Mandirs and used by world renouncing ascetics, could not but have been attatched to some religious system. But what could that religion be, which in so remote prehistoric times, thousands of years before, had the trident as one of its sacred symbols ?

At present the Trisul is supposed to be. an enclusively savite symbol, the famous weapon of Siva, ever in his hand, and with which that god annihilated the Daityas

But the Saivite form of the Hindu religion is product of the later Puranic age, and is most probably a corrupt modification of the Rishabha cult of the earlier age, (Ref. Jain Ant. vol. IX p. 80); although the Savite, like all other Hindu cults claims the ancient vedic religion as its direct source. The influx into India, of the vedic Aryans too, is believed to have taken place about 4000 years before Christ. (cf Tilak's Arctic Home in the vedas and other authorities on Ancient India). The vedas were begun to be composed some 2000 years before christ, and the later vedic literature viz. the Samhitas, the Brahmanas, the Shatpathas, the Aranyakas, the Sutras, etc. continued to be compiled till the beginning of the Christian era, while the vedic religion in its ancient sacrificial form persisted up to the fifth century A. D. The latter, however, began to generate into popular forms

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

Furthermore, in the excavations of Basadh (ancient vaisali) certain seals have been discovered which contain Trisulas and other symbols, and which are believed to be belonging to the Jains. (cf. Report of Archaeological survey of India 1903—4; & J. R. A. S. 1902) These findings also date back to pre-Christian times, while the site is believed to be that of lord Mahavira's birthplace (cf. सिद्धान्त-भास्कर भाग १० पृ० ६९)

As to the origin of the sign (Trisul), Mr. Burnong has detected the coincidence of the form of Vardhmanakya, or the mystic symbol of Mahavir with the outline of the Bactro-Greek monogram so common on the local coins. It is similar to the figure so frequently found on the reverse side of Kadphise's coins. This particular mark, Mr. E. Thomas tells us, has been found in all its integrity on the person of an ancient Jaina statue in the Indian Museum. And he, therefore, asserts that as the lion proves to have been a special emblem of Mahavira, the mystic trident in its turn answered to his second title of Vardhaman.

Moreover, this Vardhamanakya is akin in form to another Jaina sacred symbol, Nandyavarta which signifies the sign of Taurus or Bull which is a special emblem of Lord Rishabha, the first tirthankar.

It is also the opinion of eminent archeaologist like Dr. V. S. Agarwal, that prior to the conception and at least to the general prevalence of image worship, with particular reference to Jainism, symbol worship was in vogue, (cf. U. P. Historical quarterly 1944). And iconographical experts like Mr. C. Bhattacharya attest to the original and elaborate system of symbolization found in Jainism from the earliest times (cf. Jaina Iconography).

To revert to the Trident, besides being attatched to the first and the last Jaina Tirthankaras, in the form of the Nandyavart and the Vardhmand respectively, it has a very important significance in the Jaina Philosophical system. This symbol is a very appropriate representation of the threefold path to salvation, by an adequate exercise of the control on, and an absolute concentration of the three faculties of mind, word and body. (cf. Anekant, year 5, no. 1 & 2 p. 8). In other words it symbolizes the original qualities of the soul, viz. Right faith. Right knowledge, and Right conduct, which though independent and distinct, but when developped to perfection and amalgamated into one harmonious whole, are the surest way to salvation. to the annithilation of the inimic karmic forces and the achievement of freedom from those karmas, to the end of all transmigrations, to the attainment of absolute perfection, the state of all Bliss the very Godhood. (cf. Tathwarth sutra chap. I, sutra I). (Contd.)

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

RULES.

1. The 'Jaina Antiquary' is an Anglo half-yearly Journal which is issued in two parts, *i.e.*, in year.

2. The inland subscription is Rs. 3 (including 'Jain Sidhanta Bhaskara') and foreign subscription is 4*s.* 8*d.* per annum, payable in advance. Specimen copy will be sent on receipt of Rs. 1-8-0.

3. Only the literary and other decent advertisements will be accepted for publication. The rates of charges may be ascertained on application to the Manager, 'Jaina Antiquary' The Jaina Sidhanta Bhavana, Arrah (India) to whom all remittances should be made.

4. Any change of address should also be intimated to him promptly.

5. In case of non-receipt of the journal within a fortnight from the approximate date of publication, the office at Arrah should be informed at-once.

6. The journal deals with topics relating to Jaina history, geography, art, archaeology, iconography, epigraphy, numismatics, religion, literature, philosophy, ethnology, folklore, etc., from the earliest times to the modern period.

7. Contributors are requested to send articles, notes, etc., type-written, and addressed to. K. P. Jain, Esq., M. R. A. S., Editor, 'Jaina Antiquary' Aliganj, Dist. Etah (India).

8. The Editors reserve to themselves the right of accepting or rejecting the whole or portions of the articles, notes, etc.

9. The rejected contributions are not returned to senders or postage is not paid.

10. Two copies of every publication meant for review should be sent to the office of the journal at Arrah (India).

11. The following are the editors of the journal, who work honorarily simply with a view to foster and promote the cause of Jainology :—

Prof. HIRALAL JAIN, M.A., L.L.B.
Prof. A. N. UPADHYE, M.A , D.Litt.
B. KAMATA PRASAD JAIN, M.R.A.S.
Pt. K. BHUJABALI SHASTRI, VIDYABHUSANA.

Ac. Gunratnasuri MS
Jin Gun Aradhak Trust

जैन-सिद्धान्त-भास्कर के नियम

१ 'जैन-सिद्धान्त-भास्कर' हिन्दी षाण्मासिक पत्र है, जो वर्ष में दो बार प्रकाशित होता है।

२ 'जैन-एन्टीक्वेरी' के साथ इसका वार्षिक मूल्य देश के लिये ३) और विदेश के लिये ३॥) है, जो पेशगी लिया जाता है। १॥) पहले भेज कर ही नमूने की कापी मंगाने में सुविधा रहेगी।

३ इसमें केवल साहित्य-संबन्धी या अन्य भद्र विज्ञापन ही प्रकाशनार्थ स्वीकृत होंगे प्रबन्धक 'जैन-सिद्धान्त-भास्कर' आरा को पत्र भेजकर दर का ठीक पता लगा सकते हैं; मनीआर्डर के रुपये भी उन्हीं के पास भेजने होंगे।

४ पते में परिवर्तन की सूचना भी तुरन्त आरा को देनी चाहिये।

५ प्रकाशित होने की तारीख से दो सप्ताह के भीतर यदि 'भास्कर' प्राप्त न हो, तो इसकी सूचना शीघ्र कार्यालय को देनी चाहिये।

६ इस पत्र में अत्यन्त प्राचीनकाल से लेकर अर्वाचीन काल तक के जैन इतिहास, भूगोल, शिल्प, पुरातत्त्व, मूर्त्ति-विज्ञान, शिला-लेख, मुद्रा-विज्ञान, धर्म्म, साहित्य, दर्शन प्रभृति से संबंध रखने वाले विषयों का ही समावेश रहेगा।

७ लेख, टिप्पणी, समालोचना आदि सभी सुन्दर और स्पष्ट लिपि में लिखकर सम्पादक 'जैन-सिद्धान्त-भास्कर' आरा के पते से आने चाहिये। परिवर्त्तन के पत्र भी इसी पते से आने चाहिये।

८ किसी लेख, टिप्पणी आदि को पूर्णतः अथवा अंशतः स्वीकृत अथवा अस्वीकृत करने का अधिकार सम्पादकों को होगा।

९ अस्वीकृत लेख लेखकों के पास विना डाक-व्यय भेजे नहीं लौटाये जाते।

१० समालोचनार्थ प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ 'जैन-सिद्धान्त-भास्कर' कार्यालय आरा के पते से ही भेजनी चाहिये।

११ इस पत्र के सम्पादक निम्न-लिखित सज्जन हैं जो अवैतनिकरूप से केवल जैनधर्म की उन्नति और उत्थान के अभिप्राय से कार्य्य करते हैं —

प्रोफेसर हीरालाल, एम.ए., एल.एल.बी.

प्रोफेसर ए.एन. उपाध्ये, एम. ए., डी. लिट.

बाबू कामता प्रसाद, एम.आर.ए.एस.

पण्डित के. भुजबली शास्त्री, विद्याभूषण.

PRINTED BY D. K. JAIN, SHREE SARASWATI PRINTING WORKS, LTD.
ARRAH.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust